धर्म-रहस्य

लेखक—

चम्पतराय जैन

भूमिका

इस पुस्तकका अभिप्राय केवल यही है कि भिन्न भिन्न मतोंमें जो आपसमें भेद व विवाद फैले हुए हैं उनको दूर करे। किताबके पढ़ने से यह मालूम होगा कि धर्म एक ठीक ठीक विज्ञान या विद्या है और यह भी मालूम होगा कि करीब हर मज़हबमें पूरे पूरे अलामात सचाईके अंशके पाये जाते हैं; इन्हीं अलामातको शक और धुंधलेपनसे साफ़ करके पेश करने की ज़रूरत है। मेलान या इत्तिफ़ाक़ तो स्वयं उपस्थित ही है।

पुस्तक सवाल और जवाबके रूपमें लिखी गई है। गुरु और शिष्य दोनोंही कल्पित हैं। आशा है कि जिस उद्देश्यसे यह पुस्तक लिखी गई है उसकी पूर्ति सत्यके प्रतापसे शीघ्र ही होगी।

इसके पहले संस्करणपर लेखकका नाम मैंने यूं ही ऋषभचरण जैन छपवा दिया था। इस मर्तबा स्वयं अपना नाम छपवा रहा हूँ।

बम्बई
१९।३।१९४०.

सी० आर० जैन

श्रीपरमात्मने नमः

पहिला परिच्छेद

धर्मका स्वरूप

गुरु उवाच—धर्म एक विज्ञान या विद्या है जिसका अभिप्राय मनुष्यको संसारके दुःख और आतापसे निकालकर उत्तम सुखमें स्थिर करने का है। मनुष्य सब कार्य अपने लाभार्थ करता है। बेमतलब या बिना प्रयोजन बुद्धिमान पुरुष कभी कोई कार्य नहीं करता। धर्मसेवनसे मनुष्यका यही अभिप्राय है कि उसको अनन्त, अविनाशी और अक्षय सुखकी प्राप्ति हो, जो संसारी अवस्थामें नहीं मिल सक्ता है।

संसारमें लोगोंके धन, दौलत, मान, मर्यादा, भोग, विलास इत्यादि उद्देश्य हुआ करते हैं, परन्तु ये सबके सब केवल इन्द्रियसुख हैं, जो वास्तवमें सुख नहीं हैं वरन् सुखाभास हैं अर्थात् वास्तवमें सुख तो नहीं है मगर स्थूल दृष्टिसे देखने वालोंको सुख समान भासते है। इसका कारण यह है कि ये सबके सब क्षणिक हैं। आत्माकी तृप्ति इनसे नहीं हो सक्ती है और इनके सेवनसे जो जो खराबियां इस जीवनमें और आगामी जीवनमें होती हैं उनकी उपमा शहदसे ढकी हुई खड्गकी धारसे दी गई है, जो मिठास तो रखती है; परन्तु जिह्वा और हलक़को काट डालती है। निशि वासर सुख भोगते भोगते भी इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं होती, इसलिये इन्द्रियोंको दहकती हुई अग्निकी भांति कहा है; क्योंकि जितना ज़्यादा घी अग्निपर डाला जाय उतनी ही उसकी ज्वाला अधिक प्रचण्ड होती है।

विषय भोगोंका स्वरूप यह है कि कोई बाह्य पदार्थ क्यों न हो, चाहे उसे मनुष्यने स्वतः प्राप्त किया हो, चाहे किसी और व्यक्तिने खुश होकर उसे दिया हो, प्रत्येक पदार्थ इन्द्रियोंद्वारा ही भोगा जा सक्ता है और इसी कारण सर्व पदार्थ इन्द्रिय सुखको ही दे सक्ते हैं। उनके द्वारा कोई ऐसा सुख नहीं मिल सक्ता जो अक्षय अविनाशी और अनंत हो।

मूर्ख लोग संसारकी चमक दमक और वेष-भूषाको देखकर प्रसन्न होते हैं और यहां महलसरा बना कर कयाम करना चाहते हैं, परन्तु मृत्यु किसी क्षण इस बातको जताने और याद दिलाने में त्रुटि नहीं करती कि यह दुनियां केवल एक प्रकार की सराएँ है कि जहांपर सदैव के लिये ठहरना सर्वथा असम्भव है। ऐसा स्वरूप प्राणियोंके नित्यके सुखकी इच्छा और संसारमें सुखकी असंभवता का है। बुद्धिमान पुरुष आत्मा, इच्छाओं और संसार तीनोंके स्वरूप पर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करता है।

मैंने पूछा—गुरुजी! आत्मा भी कोई पदार्थ है? पश्चिमी देशके पुद्गलवादी तो चेतनाको अनित्य सिद्ध करते हैं, फिर धर्मकी आवश्यकता ही क्या है? जो मर गया सो गया। धर्म उसका क्या करेगा?

गुरुजीने उत्तर दिया—आत्मा पुद्गल (Matter-nature-प्रकृति) से विभिन्न जातिका एक द्रव्य है। चेतना उस आत्मद्रव्यका गुण है। इसीको जीव द्रव्य भी कहते हैं। पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि होते जो आत्मद्रव्यमें स्वभावसे ही नहीं होते। आत्मा अनष्ट द्रव्य है। जो पदार्थ अनष्ट होता है वह अविनाशी भी होता है; अर्थात् वह अनादि अनन्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक

जीव एक अखण्ड और अविनाशी पदार्थ है। पश्चिमी विद्वानोंने भी आत्माको अखण्ड माना है। डब्ल्यू मैकडूगलकी रची हुई फिज़ियोलोजिकल साईकोलोजी (टेम्पिल प्राइमर सिरीज) पृष्ठ ७८—७९ (Physiological Psychology, Temple Primer series, pages 78–79) में लिखा है—

"We are compelled to admit, or so it seems to the writer as to many others, that the so called psychical elements are not independent entities, but are partial affections of a single substance or being, and since this is not any part of the brain, is not a material substance, but differs from all material substance in that, while it is unitary, it is yet present, or can act or be acted upon, at many points in space simultaneously (namely the various parts of the brain in which psycho-physical processes are at any moment occuring), we must regard it as an immaterial substance or being. And this being, thus necessarily postulated as the ground of the unity of the individual consciousness, we may call the soul of the individual."

इसका अर्थ यह है कि:—

"हम वाध्य हैं इस बातके मानने के लिये अर्थात् मुझको और बहुतसे लोगोंको ऐसा ज्ञात होता है कि अनुभव संबन्धी विभाग व अंश पृथक् पृथक् पदार्थ नहीं हैं वरन् एक ही द्रव्य व पुरुष (सत्ता) के एकदेश भाव हैं। और चूँकि यह भेजेका कोई भाग नहीं है, और कोई पौद्गलिक पदार्थ नहीं है, बल्कि सब पौद्गलिक पदार्थोंसे इस कारण वश विभिन्न है कि यह व्यक्तित्व गुणसे भूषित है और तिस पर भी आकाशके बहुतसे प्रदेशोंसे कर्तव्यपरायण होता है (अर्थात् भेजेके विविध स्थानोंसे जिनमें चेतना संबन्धी कार्यवाही प्रत्येक क्षण चालू रहती है), इसलिये हमको यह जरूर मानना पड़ता है कि यह कोई अपौद्गलिक द्रव्य वा व्यक्तित्व (सत्ता) है। और इस सत्ताको,

जिसका व्यक्तिगत चेतनाके एकपने (अखण्डता) के आधारके तौर पर मानना ज़रूरी है, हम व्यक्तिकी आत्मा कह सक्ते हैं। ”

यह आत्माका स्वरूप जो पश्चिमी विद्वानोंको बड़ी कठिनाईसे अब विदित हुआ है भारतके ऋषि महात्मा सदैव से जानते आये हैं। आत्मा अखण्ड है, इसी कारणवश कभी कोई मनुष्य अपने आपको समूह-रूपमें नहीं देखता है न कंपनी या बोर्डकी भाँति कभी कोई मनुष्य अपने आपको जानता है कि जहाँ बहुपनका प्रश्न उत्पन्न हो। इस लिये आत्मा वास्तवमें कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होता है; शरीरकी अपेक्षासे मरण जीवन होता है; द्रव्यकी अपेक्षा आत्मा नित्य और अविनाशी है। यह आत्मा सर्वज्ञ भी है।

मैंने पूछा—आत्माकी सर्वज्ञताका प्रमाण क्या है? इसको मानने के लिये तो कोई भी प्रस्तुत न होगा?

गुरुजीका उत्तरः—आत्माके सर्वज्ञ होने में सन्देह नहीं। जैनमत और हिन्दुमतके कुछ दर्शनोंमें स्पष्ट रीतिसे आत्माको स्वभावसे सर्वज्ञ माना गया है। उसकी सर्वज्ञताका समाधान यूं है कि द्रव्यके गुण एक समान हुआ करते हैं, जैसे सोना चाहे जिस देशमें हो उसके गुण सदैव एक ही प्रकारके होंगे। भेद केवल खोटकी वजहसे होगा, कि कहीं उसमें खोट अधिकांशमें पाया जायगा कहीं कम। परन्तु जहाँ कहीं शुद्ध सोना मिलेगा उसके गुण सदैव एकही प्रकारके होंगे। यही दशा आत्मोंकी है। ज्ञान व दर्शन आत्माके निजी गुण हैं और यह प्रत्येक आत्मामें विद्यमान है। यद्यपि कहीं तो यह प्रगट हैं और कहीं छुपे हुये हैं। कहीं कम है, कहीं अधिक। अस्तु, जो बात एक आत्मा जानता है उसको और सब आत्मायें भी जान सकती हैं। इसलिये प्रत्येक आत्मामें उन सब बातोंको जिनको गत कालमें

किसी व्यक्तिने जाना था, जिनको आज कोई व्यक्ति जानता है और उन सबको भी जिनको आगामी कोई व्यक्ति जानेगा, जानने की योग्यता है। अर्थात् हर आत्मामें यह योग्यता है कि तीनो लोकों और तीनों कालोंके सर्व ज्ञेय पदार्थोंको जान सके। और यह भी स्पष्ट है कि कोई ऐसा पदार्थ न कहीं है, न हुआ होगा और न कहीं होगा, जिसको जानने की आत्मामें योग्यता न हो। कारण कि ज्ञेय पदार्थके अतिरिक्त कोई Unknown (अज्ञेय) पदार्थ नहीं हो सकता है, क्योंकि विना प्रमाणके किसी वस्तुका अस्तित्व माना नहीं जा सकता है और प्रमाण उस वस्तुका, जिसको कभी कोई जान ही नहीं पावेगा, कैसे संभव है! अतः Unknown (अज्ञेय) कोई पदार्थ नहीं हो सकता है और known वा knowable अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंका जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ तक प्रत्येक आत्मामें समस्त वस्तुओं और हालतोंके जाननेकी शक्ति विद्यमान ही है। अतः प्रत्येक आत्मामें सर्वज्ञता स्वभावसे ही मौजूद है। वास्तविकता यह है कि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप व ज्ञानमयी है। जीव द्रव्यकी ही दशाओं वा परिवर्तनोंका नाम ज्ञान है। आत्माके वाहर तो पदार्थ हैं, ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो स्वयं आत्माका दिव्य प्रकाश है। अनन्त ज्ञानके साथ आत्मामें अनन्त दर्शनकी शक्ति भी विद्यमान है। यह आत्मा वास्तवमें बड़ी अद्भुत शक्तिवाला द्रव्य है। ज़रा विचार तो करो कि बाहरी पदार्थोंके दर्शनका क्या भाव है? आँख खुली नहीं कि एकदम आधी दुनियाँ प्रकाश व रूपसे चमकती हुई आँखके समक्ष मौजूद है। भला क्या यह किसी प्रकार कुलकी कुल आँखके भीतर घुस जाती है। वाहरसे तो केवल कुछ सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओंकी किरणें वा लहरें ही जिनको अँग्रेजीमें vibrations कहते हैं चक्षुओंपर

पड़ती है और चक्षु इन्द्रियसे मिली हुई नाड़ियोंपर अपना प्रभाव डालती है। आत्मासे तो उनका मिलाप कहीं दूर अन्दर जाकर होता है। और यह भी नहीं है कि आत्मा ही चक्षुद्वारा वाहर निकल खड़ा होता हो। और यदि ऐसा हो भी तो भी उसको दर्शन कैसे हो सक्ता है? अतः जब आत्मा जहांका तहां है और वाहिरी दुनियां भी जहांकी तहा है और केवल कुछ सूक्ष्म परमाणु ही वाहरसे आत्मा तक पहुंचते हैं तो क्या यह करश्मा नहीं है कि आत्मा भीतर बैठे बैठे ही सब कुछ देख सक्ता है। यथार्थता यह है कि दर्शन भी जीव द्रव्यकी पर्याय है, वाहिरी इन्द्रियोत्तेजक सामग्रीके आश्रय पर जो परिवर्तन आत्मामें होता है उसीके अनुभवका नाम दर्शन है। और अब अगर तुम इस बात पर विचार करोगे कि यह परिवर्तन आत्मामें सर्व देश नहीं होता है बल्कि केवल उसके एक देशमें होता है और वह भी उतने ही में जितनेसे चक्षु इन्द्रियकी भीतरी सूक्ष्म नाड़ियोंका सम्बन्ध है तो तुम इस बातको सहजमें ही समझ जाओगे कि यदि आत्माकी प्रकाशशक्ति एक देश ही नहीं बल्कि सर्वांग व सर्व देशमें जागृत हो जाय तो कितना अपूर्व व अनन्त दर्शन उसको होगा। अतः प्रत्येक आत्मा स्वभावसे ही अनन्त दर्शनके गुणसे भी पूरित है। और बड़ी अद्भुत बात यह है कि उसका यह अन्तरीक्ष दर्शन संसारके पदार्थोंको ज्योंका त्यों-जहांका तहां-दर्शाता है।

मैंने विनय किया:—कि गुरुजी, यह तो मैं भली प्रकार समझ गया कि हर आत्मा स्वभावसे अमर और सर्वज्ञ है परन्तु अब मैं यह जानना चाहता हूं कि आत्माको अविनाशी सुख भी क्या किसी भांति प्राप्त हो सकता है?

गुरुजीने उत्तर दिया:—हां! हर आत्मामें इस बातकी योग्यता

है कि वह अनन्त अविनाशी सुखको प्राप्त करे। आत्मा स्वभावसे ही आनन्दस्वरूप है। सांसारिक सुख दुःख तो पदार्थोके संयोग वियोगसे या मनकी कल्पना द्वारा उत्पन्न होते है। परन्तु वह आनन्द बल्कि परमानन्दकी अवस्था जो कि उस समय आत्माके अनुभवमें आती है जब वह इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोगके बखेड़ोंसे मुक्त होता है स्वयं आत्माके भीतरसे ही उत्पन्न होती है; और इसलिये आत्माके वास्तविक स्वरूपको प्रगट करती है। योगीश्वरोंको जो शांति और आनन्द योगसमाधिमें प्राप्त होता है वह कहीं उनके बाहरसे नहीं आता। कारण कि आत्माके बाहर किसी स्थानपर आनन्दकी गोलियां नहीं बिकती हैं कि जिनके खाने से सुखकी प्राप्ति हो। बल्कि बाहरसे तो जो पदार्थ आत्मामें प्रवेश कर सक्ता है वह केवल इन्द्रियसुख ही हो सक्ता है, जो क्षणिक है और अन्तमें अशांतिका दाता है और वास्तविक सुखसे विपरीत है। उस आन्तरिक आत्मिक परमानन्दके समझने के लिये जिसका अनुभव योगीश्वरोंको होता है एक दृष्टांतकी आवश्यकता है। देखो! जब कोई कार्य जिसके लिए परिश्रम करते हो सफलताको प्राप्त होता है तो उस समय जो आनन्द प्राप्त होता है वह कहांसे आता है? मान लो कि, तुम वकालतकी परीक्षा देकर उसके फलकी वाट देख रहे, हो फिर तत्क्षण एक तार तुम्हारे पास आता है कि तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। अब बताओ कि वह आनन्द जो तुमको तारके बाँचने से प्राप्त हुआ कहाँसे आया? क्या उस काग़ज़में भरा हुआ था जिस पर तारकी सूचना लिखी थी? या उसके शब्दोमें था? नहीं! क्योंकि वैसे काग़ज़ तुमने सहस्रों दफा देखे हैं और वे शब्द तो कोषोंमें ही लिखे हुये हैं, परन्तु कभी तुम उनको पढ़ कर आनन्दित नहीं हुये। अतः यह स्पष्ट है कि परीक्षामें उत्तीर्ण होने की

सूचना पर जो आनन्द मनुष्यको प्राप्त होता है वह भीतर से आता है बाहर से नहीं। और इसी कारण से उत्पन्न होता है कि सूचनाके पहुँचने से जो आत्माके अनुभवमें परिवर्तन होता है वह स्वयं सुखमयी है। भावार्थ यह है कि सूचनाके मिलने से एकदम उन समस्त कठिनाइयों, परेशानियों और कष्टोंका जो वकालतकी पढ़ाईके कारण तुमको झेलनी पड़ती थीं विनाश हो गया, और उनके नष्ट हो जाने के कारण आत्मा क्षणमात्रके लिये अपने स्वाभाविक स्वरूपमें एक अंश तक उपस्थित हो गया। स्वभावसे ही परमानन्द स्वरूप होनेके कारण आत्माका अपने स्वरूपमें उपस्थित होना ही आनन्दमयी है, जिसका अनुभव तुरन्त होने लगता है। इसी कारण योगीश्वर और महामुनि बाहरी संसारकी ओर से दृष्टि फेर कर अपने स्वात्म-अनुभवमें लीन होकर अक्षय सुखका अनुभव करते हैं। इसी की प्राप्तिके लिये मुनीश्वरोंने कठिनसे कठिन तप किये हैं। यह आनन्द जो निजानन्द कहलाता है किसी बाह्य सुखप्रदायक सामिग्रीके आधीन नहीं है; यह पूर्णरूपसे स्वाधीन है। इसका भोक्ता अपने निज स्वरूप व स्वभावमें यथार्थ परमानन्दका स्रोत पाता है और उसके अनुभवमें मग्न रहता है। इस कारण से कि परमानन्द आत्मिक गुण है और गुण गुणीमें कभी वास्तविक रीतिसे पृथक्‌ नहीं हो सकता है इसलिये यह परमानन्द एक बार पूर्णतया प्राप्त हो जाने के पश्चात् फिर कभी कम नहीं हो सक्ता।

यह वास्तविक आनन्द इन्द्रिय सुखोंकी भाँति पराधीन नहीं है, न क्षणिक है, न अन्तमें दुःख उत्पादक ही होता है, वरन् यह वह निजानन्द है जो मुक्त परमात्माओंको प्राप्त होता है, जो अनुपम है और पूर्ण आत्मिक स्वतंत्रताका चिन्ह है। अतः आत्मा स्वभावसे सर्वज्ञता, अमरत्व और परमानन्दके गुणोंसे भूषित,

अखण्ड, अपौद्गलिक और ज्ञानके परम ज्योतिके स्वरूपवाला, अपनी सत्तामें स्वतंत्र, पराधीनतासे रहित, मृत्यु, दुर्भाग्य, असमर्थता व निर्बलताका विपक्षी और इसलिये अनन्त शक्तिमान् है । यही सब गुण प्रत्येक जीवधारीकी आत्मामें स्वभावसे ही विद्यमान है, और पूर्णरूपमे मौजूद है । ऐसे नहीं कि किसी में स्वभावसे कम हों वा किसी में अधिक । यही गुण है जो पूज्य ईश्वरीय गुण माने गये है । स्वाभाविक गुणोंकी अपेक्षा परमात्मा वा ईश्वरमें और साधारण आत्मामें कोई भेद नहीं है । भेद केवल इतना है कि संसारी आत्मामे यह गुण इस समय अपना पूरा कर्तव्य नहीं करते है और दबे पड़े है । मिसाल इसकी पानीकी बूँदकी है, जो वास्तवमें दो प्रकारकी गैसों (पवनकी क़िस्मके पुद्गल) अर्थात हाइड्रोजन और ओक्सीजनके मिलने से बनी है; परन्तु जब तक वह गैसे पानीके रूपमे एक दूसरेसे मिली रहती हैं तब तक उनके स्वाभाविक गैसवाले गुण कार्यहीन रहते हैं । यही अवस्था संसारी जीवकी है जो वास्तवमें तो परमात्मा है, परन्तु जब तक वह पुद्गलसे मिश्रित व वेष्टित रहता है उस समय तक उसका परमात्मापन कार्यहीन रहता है और दिखाई नहीं देता । और जिस प्रकार पानीकी दशामे संयुक्त गैसोंका स्वभाव नष्ट नहीं हो जाता वरन् उपस्थित रहता है, और उक्त गैसोंके एक दूसरेसे प्रथक् हो जाने पर झट प्रगट हो जाता है, इसी प्रकार आत्माका यथार्थ स्वभाव भी नष्ट नहीं हुआ है, बल्कि पुद्गलके मिलापके कारण केवल अप्रगट अर्थात् दबा हुआ है । इस पुद्गलसे छुटकारा हो तो आत्मा परमात्मा हो जाय । हे पुत्र ! ऐसा अद्भुत स्वरूप इस जीवका है ।

मैंने प्रश्न किया:—आपकी महती कृपा तथा दयासेमें अपना अर्थात् आत्माका वास्तविक स्वभाव व गुण तो भली प्रकार समझ

गया। परन्तु पुद्गलका स्वरूप जो इसमें आपने मिश्रित बतलाया है उसका रूप मैं नहीं समझा कि वह क्या पदार्थ है? और किस प्रकार आत्मा तक आता है? और कैसे उसके द्वारा आत्माके यथार्थ गुणोंका घात होता है?

गुरुजीने उत्तर दियाः—हे पुत्र! यह शरीर जो जीवके साथ लगा हुआ है यह मृतक अचेतन पदार्थ ही पुद्गल द्रव्यका बना हुआ है। इस मृतकका सम्बन्ध ही ग़जब है और बड़ा हानिकारक है। यह भी नहीं है कि यह मुर्दा जीवके आधीन हो बल्कि यहां तो विषय "ज़िन्दहबदस्त मुर्दा" (अर्थात् जीवितेके मुर्देके हाथमें होने) का है। यह बन्दीखाना है जिसमें आत्मा बंधुओंके सदृश है। यद्यपि इसीं के कारण आत्मा चलता फिरता है। फिर यह क़ैद ऐसी है कि इस के भीतर ज़रा भी हिलने डुलने की गुंजाइश नहीं है। यदि कोई मनुष्य इसमें शङ्का करे तो उससे मेरा प्रश्न है कि तुम तो आत्मा हो और यह शरीर पुद्गल है जो तुमसे भिन्न द्रव्यका है तो फिर इसमेंसे निकल क्यों नहीं आते हो? इससे विदित होता है कि जीव और पुद्गल मिलकर कुछ अंश एकमेक हो गये हैं। यही कारण है कि जिससे उसके स्वाभाविक गुण घाते गये हैं, जैसे हाइड्रोजन व ओक्सीजेनके स्वाभाविक गुण जब यह मिलकर पानीकी पर्यायमें उपस्थित होते हैं घाते जाते हैं। अब इस पुद्गलका आत्माकी ओर आना कैसे होता है? वह इस प्रकार है कि इस पुद्गलके आगमनकी आत्मामें तीन प्रणालियाँ हैं जिनको मन, वचन और काय कहते हैं। इनके द्वारा सूक्ष्म पुद्गल वर्गणायें हमेशा आत्मामें मिलती रहती हैं। देखो! जब ध्यान जिह्वापर धरे हुये कौरकी ओर नहीं होता है तो उसका स्वाद नहीं आता है। और जब ध्यान उधर होता है तो

स्वाद आता है। दोनों दशाओंमें कौर तो एक ही द्वारसे प्रविष्ट हो कर एक ही मार्ग द्वारा चल कर एक ही स्थान पर पहुँचता है, परन्तु इसका क्या कारण है कि एक दशामें तो उसका स्वाद आया और दूसरीमें नहीं? इसका उत्तर यह है कि जीवके ध्यानमें यह विशेष शक्ति है कि उसके द्वारा आत्मा पदार्थोंके सूक्ष्म परमाणुओंको अपनी ओर खींच लेता है। इसलिये जब ध्यान मुँहके कौरकी ओर होता है तो इस आकर्षण शक्तिके द्वारा आत्मा उसमेंसे स्वादकी सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओंको अपनी ओर खींच लेता है। और जब इसका ध्यान कहीं और होता है तो रसके परमाणु जिह्वा और हलकसे उतर कर पेटमें जा पड़ते हैं, परन्तु आत्मासे नहीं मिल पाते है। रसके सूक्ष्म परमाणुओंके आत्मासे मिल जाने का कीमियाई असर यह होता है कि उसमें एक नवीन दशा अर्थात् State of Consciousness (ज्ञान परिणति) उत्पन्न हो जाती है। और इस नवीन दशाका नाम स्वाद या स्वादका अनुभव है। ध्यानका ऐसा प्रभाव है। उससे आत्मामें आकर्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण यह पुद्गल द्रव्यको अपनी ओर खींचता रहता है और उससे मिश्रित होता रहता है। अब ध्यानका भावार्थ यहांपर सीधा-सादा इच्छा है। क्योंकि प्राणीको जिस वस्तुकी इच्छा होती है उसीकी ओर उसका ध्यान होता है। अस्तु यह प्रगट है कि जीव और पुद्गलका मेल इच्छाके कारण होता है। इस पुद्गलके मैलको द्रव्यकर्म कहते हैं। इच्छाका यह परिणाम तो जीव और पुद्गलके मेलकी अपेक्षा है। इसका दूसरा परिणाम भावोंकी अपेक्षा है जिसको भावकर्म कहना चाहिये। भावोंकी अपेक्षा इच्छासे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है क्योंकि इष्ट वस्तुसे राग होता है और अनिष्ट वस्तुसे द्वेष। और रागद्वेषमें

ही क्रोध मान माया लोभ गर्भित हैं जो आत्मज्ञानमें अत्यन्त बाधक हैं। यह आत्मा अपनी इच्छाओं और क्रोधादि परिणामोंके वश अनादि कालसे आवागमनमें है। कभी आज तक इसको अपना बोध नहीं हुआ और न इसने कभी गत समयमे अपनी स्वाभाविक पूर्णताको प्राप्त किया, क्योंकि यदि यह कभी परमात्मापनकी स्वतंत्रताको प्राप्त हुआ होता तो यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंत शक्तिमान और परमानन्दका भोगनेवाला होता और तीनों लोकमें ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो ऐसे पूज्य गुणोंसे सुशोभित परमात्माको फिर पकड़ कर आवागमनके चक्करमें डाल दे। अस्तु, यह सिद्ध है कि यह जीव गत समयमें कभी पुद्गलके मैलसे पाक न था अर्थात् कभी शुद्ध दशामें न था। ऐसा स्वरूप कर्मोंके आश्रवका है जो मैंने तुमसे कहा।

मैंने कहाः—आवागमनका सिद्धांत आपके वचनोंद्वारा तो स्पष्टतया सिद्ध है। क्योंकि यह बात तो बहुत ठीक है कि जो जीव अनादि कालसे विद्यमान है वह अवश्य आवागमनके चक्करमें रहा होगा। परन्तु इसका कारण मेरी समझमें नहीं आया कि लोगोंने ऐसी सहज बातके समझने में धोखा क्यों कर खाया?

गुरुजीका उत्तरः—आवागमनके सिद्धांतमें तनिक भी संदेह नहीं है, केवल अज्ञानका पर्दा पड़ा हुआ है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता है कि एक जीवने एक शरीरसे निकल कर दूसरे शरीरमें प्रवेश किया। इसी कारणसे कुछ लोग इस वर्तमान समयमें इस आवागमनके मसलेसे इन्कार कर बैठे हैं, वरना केवल चार्वाक मतमें ही इसको नहीं माना गया था। बौद्धमतावलंबियोंने भी इस सिद्धांतको स्वीकार किया है यद्यपि वे आत्माको नित्य

नहीं मानते हैं। जिन व्यक्तियोंको यह सिद्धांत अस्वीकार है उनसे पूछो—आत्मा कोई पदार्थ है या नहीं? अब अगर वह कहें कि हां, हम आत्माको मानते हैं तो उनसे पूछो कि वह आज तक शुद्ध अवस्थामें था वा अशुद्धमें। अगर वह उत्तर दें कि वह शुद्ध अवस्था में था तो यह बात भी अभी मिथ्या प्रमाणित हो चुकी है। कारण कि शुद्ध जीव तो ईश्वर परमात्मा ही है और उसका आवागमन में गिरना वा गिराया जाना नितान्त बुद्धिके विपरीत है। बस, केवल एक ही उज़र अवशेष रह जाता है और वह यह है कि जीव अशुद्ध दशामे अनादिकालसे अब तक कार्यहीन (functionless) पड़ा रहा और अब इस अनन्त समयके व्यतीत हो जाने पर एकदम जन्म धारण कर बैठा। इस संसारमे जीव अनंत हैं और उनकी दशायें और जीवनकी गतियां भी बहुत प्रकारकी है। अगर गत समयमें सब जीव कार्यहीन चुपचाप पड़े रहे तो उनमें योनियों और दशाओंके अन्तर कैसे हो गये? और अन्तर भी कैसे कि एक बुद्धिमान है तो दूसरा मूर्ख। एक अन्धा है तो एक सुझाखा, एक मोक्षका खोजी है तो दूसरा नरकगामी, कोई धनवान है कोई निर्धन है, कोई तन्दुरुस्त व खूबसूरत है तो कोई रोगी व कुरूप है। यह भेद तो मनुष्योंके है। मनुष्यों, पशुओं और वनस्पति आदिके अन्तर तो और भी बड़े है। क्या किसी देवी देवताने इनकी ऐसी दशायें बना दीं? और बिना अपराध ही? अगर ऐसा हो तो देवी देवता संसारी जीवकी भांति अन्यायी व रागी द्वेषी ठहरते हैं। और नहीं तो मानना पड़ेगा कि जीवोका वर्तमानका जन्म कोई अनोखी अलौकिक घटना नहीं है जो अनादिकालसे उपस्थित जीवके जीवनमें प्रथमवार ही हुई हो, बल्कि एक प्राकृतिक नियम है जिसके अनुसार अशुद्ध जीवका

नित्य जन्म मरण हुआ करता है जबतक कि वह मोक्ष न पा ले। आत्माके सम्बन्धमें अशुद्धताका अर्थ ही यह है कि वह शरीरधारी हो। अतः जब वह इस जन्मसे पहले अशुद्ध अवस्थामें था तो शरीरधारी तो अवश्य ही हुआ। जिससे यह सिद्ध होता है कि पहले शरीरके मृत्यु होने पर ही यहां जन्म हुआ है। और यह भी नहीं है कि हम ऐसा मान लें कि किसीने इस स्वभावसे पूज्य आत्माको पौद्गलिक अपवित्रतामें लपेटकर कहीं डाल रक्खा था जिससे वह शरीरधारी तो नहीं था परन्तु बिल्कुल ज्योंका त्यों कार्यहीन इस तमाम अनन्तकालमे जो गत समयका अर्थ है पडा रहा। यहां भी यदि किसी ईश्वर पर-मात्माने ऐसा काम किया तो अत्यन्त घृणित काम किया। मगर वास्तवमें यह बहस भी सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि केवल बाहरसे पुद्गलमें लिप्त होने से आत्माके यथार्थ परमात्मापनके गुणोंका घात नहीं हो सक्ता है। गुणोंका घात करने के लिये तो यह आवश्यक है कि जीव और पुद्गल जीवके आन्तरिक भावों अर्थात् इच्छा द्वारा मिलकर एक मेक हो जायें जो शरीर धारण करने का भाव है। और जीवन्मुक्त जीव तो शरीरमें रहते हुए भी सर्वज्ञ होते हैं और परमानन्दका अनुभव करते हैं। क्योंकि उनके शरीर तो होता है परन्तु घातिया कर्मोंका अभाव हो जाता है। कमसे, कम यही दशा उस आत्माकी होगी जो पुद्गलमें लिपटा हुआ है मगर शरीरधारी नहीं है। अस्तु, यह प्रगट है कि गत समयमें बराबर यह आत्मा शरीरधारी रहा है। नहीं तो यह परमात्मा होता और उसका फिर शरीर धारण करना निनान्त असम्भव होता। जीवात्मा और परमात्माका भेद अब स्पष्ट है। गुणोंकी अपेक्षा जीवात्मा और परमात्मा एक ही द्रव्य हैं और समान हैं। पर्याय अर्थात् अवस्थाकी अपेक्षा परमात्मा शरीर और

कर्मबन्धसे मुक्त, वांछाओं व कांक्षाओंसे रहित, निजानन्दके परम सुखमें लीन, अक्षय अविनाशी पदमें विराजमान और इसके विरुद्ध जीवात्मा शारीरिक संयोगके कारण सब प्रकार की अशान्तियों, आतापों बन्धनों और झगड़ोमें फँसा हुआ यमराजके चुंगलमें पड़ा हुआ है। धर्म सिखलाता है कि संसारी जीव भी अपने आतापों संतापोंसे निकल कर कर्म बन्धनोको तोड़कर देहरहित शुद्ध आत्मिक छविको प्राप्त होकर साक्षात् परमात्मस्वरूपको धारण कर सकता है। इस परमात्मपदकी प्राप्तिका उपाय एक स्वात्म-अनुभव है, जिसके द्वारा वह आकर्षण शक्ति जो सूक्ष्म पुद्गल वर्गणाओंको खींचकर आत्मामें मिलाती रहती है, नष्ट हो जाती है। अतः स्वात्म-अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है।

मेरा प्रश्नः—गुरुजी ! मैं अपना वास्तविक स्वरूप तथा आवागमनका चक्र और पुद्गलका आश्रव आदि भली प्रकार समझ गया हूँ। परन्तु आपने अभी कहा है कि मोक्ष अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूपमें विराजमान होना स्वात्म-अनुभवका फल है। स्वात्म-अनुभव मैं भली प्रकार नहीं समझ सका हूँ। कृपया इसे विस्तार पूर्वक वर्णन करके मेरा बोध कीजिये।

गुरुजीका उत्तरः—पुत्र ! स्वात्म-अनुभवमें दो पक्ष हैं-एक स्वात्मा और दूसरा अनुभव। जिस पदार्थका अनुभव करना है वह स्वात्मा है। किसी बाहिरी परमात्माका अनुभव न तो सम्भव ही है और न वास्तविक आनन्दका कारण हो सकता है। अब यह अमर साफ हो गया कि स्वात्म-अनुभवकी आवश्यक्ता इसलिये है कि सांसारिक सुखोंसे अबतक तेरी तृप्ति नहीं हुई और न आगामी हो सक्ती है वल्कि उन्होंने तो तुझे स्वात्माके ज्ञानसे जो साक्षात् परमात्मा है वंचित

रक्खा है। कौन पदार्थ है जिसको आत्माने गत समयमें हज़ारों लाखों वार नहीं भोगा ? गत समयका परिमाण विचारणीय है। करोड़ दो करोड़ यहां कोई चीज़ नहीं है अर्बों खर्बोंसे भी काम नहीं चलता, असंख्यात स्वयं अपूर्ण पैमाना है। अनन्तकी गिनतीसे छोटा कोई शब्द गत समयके भावको पूर्णतया प्रगट नहीं कर सक्ता। यह आत्मा अनादि अनंत है और इस गत अनादि अनंतकालमें बराबर सर्व प्रकारके विषयभोगोंको विविध योनियोंमें भोगता रहा है तिसपर भी इसकी तृप्ति कभी नहीं हुई। और न कभी स्वात्म-अनुभवके बिना होना सम्भव है। स्वात्म-अनुभवका स्वरूप इस प्रकार है—

दोहा—निजमें निजको आपसे, निज द्वारा निज काज।
निज लखि मानूँ अनुभऊँ, निजानन्द रससाज॥

दूसरा पक्ष स्वात्म-अनुभवका 'अनुभव' है। यद्यपि शब्द 'अनुभव' साधारण शब्द है और नित्यप्रति मनुष्य इसका प्रयोग करते हैं तो भी इसके लिये दार्शनिक विचारकी आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं है तो स्वात्मा तो तुम हो ही स्वयं अपना अनुभव भी कर लो। समाजों लेकचरों व उपदेशकोंकी आवश्यक्ता ही क्या है ? यथार्थता यह है कि वह काम जो सबसे सरल होना चाहिये कर्मबन्धनके कारण अत्यन्त दुस्तर हो रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि जीव अपना अनुभव करना चाहे और फिर न कर सके। किसी दूसरेका अनुभव हो तो दूसरी बात थी तब तो वह उस दूसरे व्यक्तिकी मर्जीपर अवलम्बित होता। किन्तु यहां तो जीव स्वयं उपस्थित है और स्वयं अनुभव करनेको भी प्रस्तुत है, फिर भी सफलता नहीं होती। कोई कहता है कि मुझे concentration (चित्तका एकाग्र होना) नहीं होता। कोई कहता है मुझे मेडिटेशन (meditation—ध्यान) सिखा

दो, कोई भक्तिमार्गमें अटका पड़ा है, कोई कहीं टकरा रहा है और कोई कहीं उलझ रहा है। इससे तो प्रतीत होता है कि स्वात्म-अनुभव कोई सरल बात नहीं है। शास्त्रोंका भी यही कथन है कि प्रथम विवेकसे श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धाके उत्पन्न होने पर तीन चार योनियोंमें मोक्ष होती है। मोक्ष-सुंदरीसे ऐसे सेंतमेंतमें चट मंगनी पट विवाह नहीं हो जाता। क़ायदे और तरीक़ेसे प्रत्येक काम करना होता है। सिड़ीपनसे कुछ लाभ नहीं होता, परन्तु जोश और साहस तथा उत्कंठा जितनी बढ़ती रहें उतना ही अच्छा है। अनुभवका स्वरूप इस प्रकार है कि किसी अन्य पदार्थके जानने मे आत्मा स्वयं अपना बोध करता है, कारण कि अन्य पदार्थका ज्ञान आत्माको स्वयं आत्माकी ज्ञान चेतनाकी दशाओंके परिवर्तनों द्वारा ही हो सक्ता है और इस कारणसे कि आत्माकी ज्ञानचेतनाके परिवर्तन आत्मद्रव्यसे भिन्न कोई अस्तित्व नहीं रखते हैं, इसलिये, उनका अनुभव स्वयं अपने अनुभव ही के साथ सम्भव है। दूसरे छद्मस्थ अवस्थामे बिना ज्ञान चेतनाके परिवर्तनोंके परपदार्थका बोध नितांत असम्भव है। अब जीवको जो परपदार्थके जानने में अपना बोध होता है वह गौण-रूपमें होता है, मुख्यरूपमें नहीं। इसलिये ऐसा विदित होता है कि जाननेवालेको दूसरे पदार्थका तो बोध हुआ परन्तु अपना नहीं। यही दोष इस स्वात्म-अनुभवमें है। इसी दोषको दूर करना है, जिससे स्वात्माका अनुभव जो इस समय गौणरूपमें होता है मुख्य रूपमें होने लगे और परपदार्थका बोध गौणरूपमें रह जाय। स्वात्म-अनुभवका मुख्य तात्पर्य यह है कि स्वका अनुभव मुख्य हो और परका अनुभव गौण हो। यहां दशा इसके विपरीत है। इसीको अँग्रेजीमें putting the cart before the horse (अर्थात् छकड़ेको घोड़ेके आगे

लगाना) कहते हैं। अतः जीवको केवल इतनाही काम करना है कि घोड़ेको उसके योग्य स्थानपर लगावे अर्थात् जो वस्तु अब गौण है उसको मुख्य कर दे और मुख्यको गौण कर दे। अब आत्मा तो जहां का तहां है। उसको तो उठाकर किसी और स्थानपर नहीं धरा जा सक्ता। अर्थात् घोड़ा तो अपने स्थानपर है केवल छकड़ेको जिस स्थानपर वह अब है वहांसे हटाकर उसके योग्य स्थानपर खड़ा करना है और इसमें ही सारी दिक्कत व कठिनाई है। क्योंकि यह छकड़ा तद्विरुद्ध इसके कि यह अचेतन और जड़ है जगत्प्रसिद्ध अड़ियल टट्टूसे भी अधिक अड़ियल है। इसका अपने स्थानसे हटाना बड़ा कठिन है। यह वह शत्रु है कि जो इससे लड़ने आता है उसका आधा बल तुरन्त हर लेता है और फिर उसको सुगमतासे कुचल डालता है। इसको मारने के लिये बुद्धिमत्ताके पेड़की आड़ पकड़नी पड़ती है। क्योंकि यह केवल जीवात्माकी इच्छाओंका पुंज है जो विषयवासनाओंके रूपमें इन्द्रियोंको लुभाता रहता है और इस कारणवश आत्माको गौण अवस्थामें डाले रखता है। अतः इच्छाका निरोध पूरा पूरा हो तो शत्रु पर विजय प्राप्त हो। इसलिये राग व द्वेषको हृदयसे पृथक करना है—क्रोध मान माया लोभको नष्ट करना है। मिथ्यात्वकी प्रबलता और इन बुरे कषायोंकी तीव्रतासे साधारणतया चार डिगरीका ज्वर प्रत्येक समय संसारी जीवको चढ़ा रहता है जिसके कारण धर्मोपदेश उसको बुरा मालूम होता है। जब मिथ्यात्व और कषायोंकी प्रबलतामें कुछ न्यूनता हो जाती है और ज्वर एक डिगरी उतर जाता है तो उस समय जीवको धर्मोपदेशमें रुचि उत्पन्न हो जाती है, मगर उसपर अमल नहीं कर सक्ता है। इसके उपरांत जब एक डिगरी ज्वर और हल्का हो जाता है तो

यह एकदेश चारित्रका पालन करता है और स्थूलरूपसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदार-संतोष व परिग्रहत्यागके पंचव्रतोंका पालन करता है। फिर एक डिगरी ज्वर जब और उतर जाता है तो वह संन्यास आश्रमकी कठिनाइयोंको सहन करने के लिये उद्यत हो जाता है और साधुओंके कठिन व्रतोंको पालने लगता है। अन्तमें जब चारों दर्जेका ज्वर जाता रहता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है और सर्वज्ञताको प्राप्त करता है। अब वह केवल शरीरमें होने के कारण संसारमें रहता है और जब आयुकर्मके पूर्ण होने पर शरीर पृथक् हो जाता है तो तुरन्त निर्वाणक्षेत्रमें विशुद्ध नूर (जीवद्रव्य) की छविको धारण किये हुये मुक्त जीवों अर्थात् परमात्माओंके स्थान पर विराजमान हो जाता है और नित्य परमानन्दका सुख भोगता है। यह आत्मिक ज्वर हल्का कैसे हो ? कठिनाई सारी प्रारम्भमें है जब रोगीको धर्मोपदेश ही कडुवा प्रतीत होता है। क्योंकि धर्मलाभ एक दफा होने के पश्चात् तो फिर सब मामला सहल हो जाता है। फिर तो श्रद्धा अपना प्रभाव स्वतः दिखाती है और धीरे धीरे अवशेष तीन डिगरियोंका ज्वर नष्ट हो जाता है। परन्तु कठिनता प्रारम्भमें है जब जीव धर्मके नामसे भागता है और पाखण्ड और हिंसामें निमग्न रहता है। ऐसे समयमें धार्मिक डाक्टर लोग धर्म उपदेश नहीं देते हैं। इससे तो उसको तुरन्त कय (अत्यन्त अरुचि) हो जाती है और फिर वह हाथ धरने ही नहीं देता है। इस समयमें केवल एक ही औषधि है जो किसी विधिसे पिलानी चाहिये और उस औषधिका नाम अहिंसा है। जब यह औषधि रोगीके पेटमें पहुंच जाती है तो इससे उसके ज्वरकी तेजी और विषमतामें कुछ कमताई हो जाती है और दया और रहमकी झलक उसके चेहरे पर आ जाती है। बस! दयाका गुण

हृदयमें उमड़ा मानो आत्मज्ञानका समय आया, क्योंकि दयाका भाव ही आत्मा अर्थात् जीवकी प्राणरक्षाका है, यही कारण है कि ऋषियोंने अहिंसाके विषयमे कहा है कि ' अहिंसा परमो धर्मः '। जहा और कोई औषधि सफल नहीं होती, जहा रोगी औषधिके नाम मात्रसे भागता है वहा यह अहिंसा अपना कर्तव्य दिखाती है और जो रोगी किसी अन्य दवाईसे अच्छा नहीं हो सक्ता उसको चंगा करती है। अस्तु, जो जीव अहिंसाके शुभ नियम पर अमल करते हैं वे ही मोक्षके अधिकारी होते हैं। अब इस बातको सुनो कि धर्म-लाभ होने पर इच्छाका निरोध कैसे हो? यह तो प्रत्यक्ष प्रगट है कि बिना सीढीके छत पर चढ़ने की कोशिशमें कष्ट और परेशानीके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सक्ता है, इसलिये यह आवश्यक है कि नियम और क्रमसे उसके नष्ट करने का प्रयत्न किया जावे। यहांपर दो नियम याद रखना चाहिये। प्रथम तो सब प्रकारकी इच्छाओंको जीव इकदम नहीं छोड़ सक्ता है और दूसरे यह कि सबसे बुरी आदतों व इच्छाओंका त्याग सबसे पहिले होना चाहिये। क्योंकि निःकृष्ट (दुष्टतम) की उपस्थितिमें नीच और नीचतर (दुष्टतर) छोड़ने से क्या लाभ? निकृष्टमें तो नीच व नीचतर दोनों ही सम्मिलित हैं, इसलिये जब इन दोनों नियमों पर ध्यान दोगे तो यह ज्ञात हो जायगा कि (१) मास (२) मदिरा (३) जुआ (४) चोरी (५) तमाशबीनी (६) शिकार (७) झूठ बोलना यह सात बातें एकदम छोड़नी चाहिये। क्योंकि ये अन्य सब बुराइयोंकी जड़ हैं। इसके उपरान्त पंचव्रत जिनका पूर्व वर्णन हो चुका है, पालने चाहिये। फिर धीरे २ अपने आपको संन्यासके कठिन मार्गके लिये तैयार करना चाहिये। इस कालमें गृहस्थीमें रहकर और विवाह

करके उत्तम सज्जन पुरुषके तौरपर भोगाविलास भी ठीक है। परन्तु चित्तकी वृत्ति जहां तक वने उदासीन रूप रहे, और यदि सम्यक् दर्शनका लाभ हो गया है तो यह स्वयं उदासीन रूपमें परिवर्तित होने लगेगी। अतः ४५-५५ वर्षकी अवस्थामें गृहस्थ संन्यासके योग्य हो जायगा यदि उसकी होनहार शुभ है, नहीं तो आगामी जन्ममें पुण्यका फल भोगेगा और वहां संन्यास लेगा। संन्यासीके तौरपर अव उसका संसारसे केवल इतना ही संबंध रहता है कि वह शुद्ध भोजनके निमित्त उत्तम गृहस्थके यहां जाता है वा अपनी शक्तिके अनुसार धर्मोपदेश सज्जन पुरुषोंको देता है-अवशेष सर्वकाल उसका प्रयत्न यही रहता है कि स्वात्म-अनुभव प्राप्त हो। यथार्थमें साधुका जीवन प्रारंभमें बड़ा कष्टसाध्य जीवन है। गृहस्थ तो पूरी २ उदासीनताको भी कठिनाई से प्राप्त होता है किन्तु साधूको उन सम्पूर्ण इच्छाओंको पूरा २ नष्ट करना है जो स्वात्म-अनुभवको नहीं होने देती हैं। वह रत्न त्रय मार्ग अर्थात् Right-Faith [सत्य श्रद्धा अर्थात् सम्यक्दर्शन], Right Knowledge [सत्य अर्थात् सम्यक्ज्ञान] और Right Conduct [सत्यमार्ग अर्थात् सम्यक्चारित्र] पर सावधानीके साथ चलता है। और अपनी शक्तिके अनुसार नित्यप्रति उन्नति करता रहता है। इस रत्नत्रय मार्गका मुख्य कर्तव्य इस प्रकार है। सम्यग्दर्शनका कर्तव्य यह है कि दृष्टिको आनन्द व पूर्णताके वन्दरगाहकी ओर जहाँ जीवको पहुँचना वाञ्छनीय है वरावर लगाये रहे और एक क्षणको भी उसको किसी दूसरी दिशामें न जाने दे। यह जहाजके पतवारके सदृश है, क्योंकि जिधर पतवारका रुख होता है उधर ही जहाज चलता है। जिसके जीवनरूपी नौकाके पतवारका रुख अन्य स्थानकी ओर है उसका मोक्षस्थानको पहुँचने की आशा करना व्यर्थ है।

सम्यक्ज्ञान वह जहाजरानीका नक्शा है जिससे मार्गका हाल ठीक २ मालूम होता है कि कहाँ चट्टान है, कहाँ दलदल है और कहाँ अन्य प्रकारकी कठिनाइयाँ हैं। जिस मल्लाहके पास ऐसा नक्शा नहीं है उसकी नौका समुद्रके पार कैसे पहुँच सकती है? वह मार्गमें ही कहीं चट्टानोंसे टकराकर अटक जायगी। सम्यक्चारित्र तीसरा रत्न इस रत्नत्रय मार्गका है। इसकी आवश्यकता ठीक वैसी ही है जैसी जहाजको स्टीमकी आवश्यकता होती है। क्योंकि नौका जबतक चलेगी नहीं, उद्दिष्ट स्थान-बन्दरगाह तक कभी नहीं पहुँचेगी। पतवार और मार्गका चित्र केवल क्या करेंगे। इसी प्रकार सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान बिना सम्यक्चारित्रके कार्यहीन ही रहते हैं। तिसपर भी यह ठीक ही है कि सम्यक्दर्शनके प्राप्त होने पर चारित्र कभी न कभी ठीक हो ही जाता है, क्योंकि जिसके मनमें यह बात निश्चित हो गई है कि उसको अमुक स्थानपर जाने से अवश्य ही बड़ाभारी लाभ होगा वह एक न एक दिन उधरको चल ही पड़ेगा। दुविधावाला तो चाहे न जाय परन्तु दृढ़ निश्चयवाला बिना जाये कभी न रहेगा। सम्यक्चारित्र वास्तवमें स्वात्म-अनुभव ही है ऐसा पहिले कहा गया है। परन्तु इस स्वात्म-अनुभवकी सिद्धिके लिये इसमें बाधक होनेवाली आदतों, इच्छाओं और कषायोंको नष्ट करना है। साधुका बस यही काम है कि वह अपनी इच्छाओं, बुरी आदतों और कषायोंको जड़ बुनियादसे नष्ट कर दे जिससे कि फिर कोई भी बाधक स्वात्म-अनुभवमें न रहे। इसलिये वह न भूख प्यासकी परवा करता है, न कीड़े मकोड़ों व जानवरोंके काटने की, और न वह शारीरिक आरामको ढूँढ़ता है, न क्रोध, मान, माया, लोभको अपने मनमें आने देता है। नियम और क्रम जो धर्मसे सम्बन्धित हैं उनकी वह सख्तीसे पाबन्दी करता

है। और अन्ततः कठोर तपस्या द्वारा वह अपने मन वचन और कायको अपना दास बना लेता है जिससे वह फिर उसके स्वात्म-अनुभवमें विघ्न नहीं डाल सकते। जो लोग concentration (चित्तके एकाग्र न होने) की शिकायत करते है उनको अब जान लेना चाहिये कि क्यों उनका ध्यान स्थिर नहीं रहता है। ध्यान मन द्वारा होता हैं और मनकी यह अवस्था है कि जरासी पीड़ा कहीं शरीरमे हुई और तबीयत बेचैन हुई। ज़रा किसी मनको लुभानेवाली वस्तुका ख्याल आया ध्यान और मन बेक़ाबू होकर भागा। अतः यथार्थ concentration (अचल ध्यान) केवल मन, बचन और कायके पूर्णतया वशमें हो जाने पर ही होता है। अब ध्यानके विषयमें सुनो। ध्यान चार प्रकारका होता है। एक वह जिसमें दिल हिंसाके कामोंमें लगा रहे और उसमें प्रसन्न हो। यह अत्यंत् बुरा है। इससे हृदयमें कठोरता उत्पन्न होती है और यह नरक और निकृष्ट दुर्गतिका कारण है। दूसरा वह ध्यान है जो विषयवासनाओंमें लगा रहे। यह इष्टवियोग अनिष्ट संयोगरूप चिंताकी जननी हैं। यह भी बुरा हैं और दुर्गतिका कारण है। तीसरे प्रकार का ध्यान आत्मविचार अर्थात् धर्म सम्बंधी बातोंका ध्यान है, जैसे तत्त्वविचारादि। इस समय तुम्हारे मनकी प्रकृति धर्मध्यान रूप है। चौथे प्रकारका ध्यान जो शुक्लध्यान कहलाता है स्वात्मध्यान व योग समाधि है जो अन्तमें बढ़ते २ शुद्ध स्वात्म-अनुभव व निर्विकल्प समाधिका स्वरूप धारण कर लेता है। निर्विकल्प समाधिका स्वरूप यह है कि आत्मा स्वयं बिना मन, वचन व कायकी सहायताके साक्षात् अपनी सत्ताका अनुभव निर्विघ्नरूपसे करे। यही ध्यान परम शुक्लध्यान हैं जो मुक्त (शरीररहित) व जीवन्मुक्त (मुक्तिके निकट पहुंचनेवाले शरीरसहित)

परमात्माओंके होता है। साधारण साधुके कभी मन कभी वचन कभी काय-योगसे स्वात्म-अनुभव होता है। मन वचन काय ध्यानके योग कहलाते हैं और साधारण साधुके ध्यानमें यह थोड़ी देर तक ही स्थिर रह सके हैं। इसके उपरांत बदल जाते हैं। परन्तु जब साधु उन्नति करके ऊपरके दर्जोंमें पहुंच जाता है उस समय इन योगोंमेसे एक ही योगका सहारा लेकर उसका ध्यान ठहर जाता है। गृहस्थके लिये स्वात्म-अनुभव करीब २ असम्भव है। उसका मुख्य ध्यान धर्मध्यान है जिसमें उसको जितना सभव हो अपने मनको लगाये रहना चाहिये। परन्तु उसके लिये भी यह उचित है कि दिनमें कमसे कम एक दफ़ सवेरेको और हो सके तो दो दफ़ या तीन दो दफ़ अर्थात् सवेरे, दोपहर और शामको एकांत स्थानमें बैठकर मनको स्वात्म-अनुभवमें लगावे। नियम यही है जो साधुका है अर्थात् या तो शरीरके चक्रोंमेसे किसी पर अपने ध्यानको स्थिर करके आत्माके अस्तित्वको अनुभव करे या मनमें शुद्ध पूर्ण परमात्माके स्वरूपको स्थिर करे और विचारे कि मैं यही हूं या शब्दों द्वारा अपनी आत्माके स्वरूपका अनुभव करे। एक सुगम उपाय इस स्वात्म-अनुभवका यह है कि आसन लगाकर बैठ जाय या खड़ा हो जावे और अपने शरीरमें अपने आत्म-देवका निर्मल सफेद नूरकी भांति या दिव्य प्रकाशके सदृश भान करे। इसमें बड़ा आनन्द मिलता है। शब्दोंद्वारा स्वात्म-अनुभव भी बड़ा आनन्दायक है। अपने ही आत्माके पूज्य स्वाभाविक गुणोंका वर्णन करना है जिससे उसकी परमात्मापनकी शक्ति जागृत हो। जितना समय इस स्वात्म-अनुभवमें दिया जावे उतना ही थोड़ा है। क्यों कि आत्मामें यह भी गुण है कि जिस बात को वह निश्चय पूर्वक मान लेता है वैसा ही हो जाता है। अतः यदि इस

आत्माको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जावे कि मैं ही परमात्मा हूं तो यह शीघ्र ही अपनी इच्छाओं और बंधनों को नष्ट कर डाले और स्वयं परमात्मा हो जावे। तात्पर्य यह है कि धर्म आत्मिक विज्ञान है जिसकी शिक्षा यह है कि—

(१) जीवात्मा ही स्वभावसे परमात्मस्वरूप है।

(२) अमुक्त दशामें जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणोंसे अनभिज्ञ होता है और इस कारण परमात्मपदको प्राप्त नहीं होता।

(३) स्वात्म-अनुभव द्वारा जीवात्मा मोक्ष और परमात्मपदको प्राप्त कर सकता है।

(४) स्वात्म-अनुभवके लिये तपस्या आवश्यकीय है।

(५) तपस्याका भाव इच्छाओं और वाञ्छाओंका सर्वथा नष्ट करना है अर्थात् इन्द्रियनिग्रह करना है और विषय भोगोंसे मुंह मोड़ना है।

दूसरा परिच्छेद

"भारतवर्षीय धर्म"

मैंने कहा:—गुरुजी! आपके मुखारविन्दसे धर्मका स्वरूप मैंने सुना और धर्मामृतसे मेरे भीतरी अन्धकारका नाश हुआ और मेरे आत्मिक संतापकी शान्ति हुई। परन्तु मैं उसके श्रवणसे एक प्रकारके चक्करमें पड़ गया हूँ, कारण कि यह धर्मशिक्षा जो इस समय मैंने सुनी है इसका वर्णन कहीं पर मेरे देखने में नहीं आया और न हिन्दुओंके पवित्र वेदमें ही पाया जाता है। कृपया मेरे इस भ्रमको दूर कर दीजिये।

गुरुजीका उत्तरः—जो धर्मका स्वरूप आज तुझको बताया गया है यही वास्तविक धर्म है। यही सब धर्मोंमें किसी न किसी रूपमें पाया जाता है। संसारके धर्मोंमें जैनधर्म और हिन्दूधर्म दोनों सबसे प्राचीन हैं। इन दोनोंकी भी यही शिक्षा है। वास्तवमें वेद संस्कृत भाषामें नहीं लिखे हुए हैं। तूने यह समझ कर कि वेद संस्कृत भाषामें ही लिखे हुए हैं उनको पढ़ा इसलिये, उनका वास्तविक रहस्य तुझको विदित नहीं हुआ। वास्तव में वेद दो भाषाओंमें लिखे हुए हैं एकमें नहीं। ऊपरी भाषा संस्कृत है परन्तु असली भीतरी भाषा काव्य अलंकार रूप है। संस्कृतके पढ़ने से तो केवल अलंकारोंका वर्णन मालूम हो जाता है, उनके भाव समझें तो वास्तविक धर्मका पता लगे। सब वेदोंमें प्राचीन ऋग्वेद है मगर स्थूल दृष्टिसे पाठ करने वालोंको उसमें कर्म, आवागमन व आत्मस्वरूप जैसी बातोंका भी पता नहीं चलता। परन्तु यह सत्य है कि ये सब बातें उसमें मौजूद हैं। क्या यह बात तेरी समझमें नहीं आई?

मैंने कहाः—आपका कथन सर्वथा सत्य है परंतु मुझ जैसे मूर्खकी समझमें आपका उपदेश सहजमें कैसे आवे? मुझे तो ऋग्वेदमें देवी देवताओंकी स्तुतियां ही मिलती हैं। इनके अतिरिक्त मैंने वेदमें और कुछ नहीं पाया न अलङ्कार ही देखे और न कहीं आवागमन, कर्म, आत्मा इत्यादिका वर्णन ही पाया। अब कृपा करके मेरे ज्ञान चक्षुओंको खोल दीजिये और मुझे बताइये कि यह क्या भेद है कि मुझे सत्य-धर्मका स्वरूप जो आज आपने समझाया, वेदोंमें नहीं मिला। और कृपया अलङ्कारकी भाषाका बोध भी मुझे करा दीजिये और इस विषयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट रीतिसे समझाइए ताकि मेरी तुच्छ बुद्धिमें यह भेद भलीप्रकार आ जावे।

गुरुजीने उत्तर दिया:—पुत्र ! वेद भाषा बड़ी उत्तम शैलीकी काव्य रचना है। संस्कृतमें उससे उत्तम अलङ्कार कम मिलेंगे। धर्म-ज्ञानके पूज्य नियमोंको ही देवी देवताओंके रूपमें वर्णन किया गया है। वर्तमान समयके मनुष्य बड़े सङ्कुचित विचारवाले होते हैं। बुद्धिमत्ताकी अपेक्षा इनको शूद्र कहना अनुचित नहीं होगा। ऐसे लोगोंको वास्तवमे वेदोका पठन पाठन मना है कि यह कहीं कुछका कुछ अर्थ न लगा लेवे। वेद बुद्धिगम्य ही हैं, परंतु जब उनका अर्थ ग़लत लगाओगे तो वेदोंका दोष कुछ नहीं है; इसलिये पिछले समय मे विद्याओंमे काव्य, अलङ्कार निरुक्त आदि पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। कारण यही है कि जो व्यक्ति के काव्यरचना, निरुक्त व अलङ्कारकी विद्यासे अनभिज्ञ है वह कभी वेदके वास्तविक भावको नहीं समझ सक्ता। वर्तमान कालमें लोग वेद भाषाको शब्दार्थमें पढ़ते हैं। इस प्रकार तो यदि शूद्र भी संस्कृत भाषा सीख ले तो पढ़ सकेगा। तो फिर ब्राह्मण (बुद्धिमान) ही को पढ़ने की आज्ञा क्यों दी जाती है? अस्तु, यथार्थ बात यह है कि वेद काव्य अलङ्कारयुक्त है और उनका अर्थ केवल ब्राह्मण (पण्डित) गण ही जान सक्ते हैं, शूद्र (तुच्छ बुद्धिके मनुष्य) नहीं। अब देख ! मै तुझे वैदिक धर्मका असली भाव समझाता हूं। इसको ध्यान देकर सुन ! इससे तेरा कल्याण होगा।

यह तुझे बताया जा चुका है कि सत्य धर्म विज्ञानके अनुसार (१) आत्मा एक द्रव्य है जो सर्वज्ञताकी योग्यता रखता है अर्थात् वह सर्वज्ञ होता यदि वह उस अपवित्रताके मैलसे जो उसके साथ लगा हुआ है पृथक् होता। (२) अपवित्र आत्मा इन्द्रियों द्वारा बाह्य संसारसे व्यापारमें संलग्न है और आवागमनमें चक्कर खाता है। (३) तपस्या और इन्द्रियनिग्रह, परमात्मापन और पूर्णताकी प्रा

साधन हैं। दूसरे शब्दोंमें प्रत्येक आत्मामें परमात्मा हो जाने की योग्यता विद्यमान है, परन्तु वह जब तक पुद्गलमे लिप्त है तब तक वह संसारी जीव (अपवित्र अवस्थामें) ही रहता है और तपस्या द्वारा पुद्गलसे खलासी पा सक्ता हैं। अतः तीन बातें जो मोक्षके अभिलाषीको जाननी आवश्यक हैं वह यह हैं:—

(१) शुद्ध जीव द्रव्यका स्वरूप।

(२) जीवात्मा (अपवित्रात्मा) की दशा। और

(३) अपवित्रताके हटानेके उपाय।

यही तीनों बातें वह विषय हैं जो वैदिक देवालयमें तीन बड़े देवताओं, सूर्य्य, इन्द्र, और अग्निके रूपमें पेश किये गये हैं।

(१) सूर्य्य सर्वज्ञताका सूचक (चिन्ह) है, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य्यके गगनमें उदय होने से सब पदार्थ दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार जब सर्वज्ञताका गुण जीवमें प्रादुर्भूत हो जाता है तो वह सब पदार्थों को प्रकाशमान कर देता है।

(२) इन्द्रका भाव सांसारिक अपवित्र जीवका है, जो इन्द्रियोंके द्वारा सासारिक भोगोंमें संलग्न होता है।

(३) अनल तपस्याकी मूर्ति है जो मोक्षका कारण है।

व्योरेके साथ, इन्द्रने

(१) गौतमकी पत्नीसे जार-कर्म किया।

(२) जिसके कारण उसके शरीरमें फोड़े फुनसियाँ फट निकलीं।

(३) यह फोड़े फुनसियाँ ब्रह्माजीकी कृपासे चक्षु बन गये।

(४) इनके अतिरिक्त इन्द्र अपने पिताका भी पिता है।

इन बातोंका विधि-मिलान निम्न प्रकार है—

(१) (क) जारकर्मका भाव जीवका प्रकृति-समागम अर्थात्

पुद्गलमें प्रवेश करना है, जो मोक्षके इच्छुक पुरुषोंके लिये अयोग्य (वर्जित) कर्म है। क्योंकि मोक्षका भाव ही प्रकृतिसंयोगसे वियोगका है।

(ख) जीवन और बुद्धि जीवके दो गुण हैं जिनमेंसे जीवन सदैव स्थित रहता है, बुद्धि समय समय पर प्रत्यक्ष और विलीन होती रहती है जैसे नींदमें उसका विलीन हो जाना।

(ग) जीवनके लिये शिक्षाका द्वार बुद्धि है, चूंकि बाह्य पुस्तकें व गुरू तो ज्ञान प्राप्तिके सहकारी कारण ही होते है, असली कारण नहीं।

(घ) बुद्धि सामान्यतः प्रकृतिसे संबन्ध रखती है और बहुत कम आत्माकी ओर आकर्षित होती है। उदाहरणरूप, पाश्चात्य बुद्धिमत्ताको देख कि जिसको अभी तक आत्माका पता ही नहीं लगा है। इसलिये जीव और प्रकृतिके समागमको काव्यरचनामें इन्द्र (जीवात्मा) का गुरु गौतम (बुद्धि) की पत्नी (पुद्गल—प्रकृति) से भोग करना बाँधा गया है।

(२) फोड़े फुन्सियाँ अज्ञानी जीव हैं जो प्रकृतिमें लिप्त होने के कारण अपने वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। यह अज्ञानताके कारण प्रथम अंधे हैं।

(३) परन्तु जब उनको ब्रह्मज्ञान अर्थात् इस बातका ज्ञान कि आत्मा ही ब्रह्म है, हो जाता है, तो ऐसा होता है मानो उनकी आँखें खुल गईं। इसी बातको अलंकारकी भाषामें इस तरह पर दिखाया है कि ब्रह्माजीने प्रार्थना पर कृपालु होकर पापके चिन्ह फोड़े फुन्सियोंको आंखोंमें परिवर्तित कर दिया।

(४) अन्तमें इन्द्र अपने पिताके भी पिता हैं क्योंकि—

(क) शब्द पिताका अर्थ अलंकारिक भाषामें उपादान कारण है। और क्योंकि—

(ख) शुद्ध जीवका उपादान कारण अशुद्ध जीव है जब कि अशुद्ध (अपवित्र) जीव स्वयं प्रकृति और जीवद्रव्यसे बना है। इसलिये एक दूसरेका उपादान कारण (पिता) है।

यह संक्षेपतः इन्द्र और उसके अपवादरूप जार कर्मका भाव है। इस देवताका शत्रु अन्धकारका असुर है, जिसका भाव अज्ञानता है। और वर्षा जो इन्द्रद्वारा होती है वह उस शांतिकी वृष्टि है जो कषायों और मिथ्यात्वके तपनके दूर होने पर होती है।

महान देवताओंकी त्रिमूर्तिमें तीसरा देव अग्नि है जो तपस्या की मूर्ति है। तपका संबन्ध यहापर स्वयं प्रगट है। अग्नि शब्द ही तपस्याके भावको उद्दीपन करने के लिये बहुत उचित है। क्योंकि तपस्याका अर्थ वास्तवमें वैराग्यकी अग्निसे जीवको पवित्र करना है। अग्निके विशेष चिन्ह निम्न भांति हैं:—

१—उसके तीन पैर हैं, व

२—सात हाथ, और

३—सात जिह्वाएं हैं।

४—वह देवताओंका पुरोहित है जो उसके बुलाने से आते हैं।

५—वह भक्ष्य और अभक्ष्य अर्थात् पवित्र और अपवित्र दोनोंको खा जाता है और

६—वह देवताओंको बल देता है अर्थात् जितना अधिक बलिदान अग्निको भेंट किया जाय उतनी ही देवताओंकी पुष्टि होती है।

इन अत्यन्त सुन्दर विचारोंकी विवेचना निम्न भांति है:—

१—तप तीन प्रकारसे होता है, अर्थात्—

(क) मनको वशमें लाना,

(ख) शरीरको वशमें लाना,

(ग) बचनको वशमें लाना ।

यदि इनमेंसे केवल दो को ही वशमें लाया जावे तो तप अधूरा रहेगा और कोई चतुर्थ वस्तु वशमें लाने को नहीं है । अब चूंकि तपस्याके यह तीन आधार हैं इसलिये अग्निके तीन पग कहे गये हैं ।

२—सात हाथोंका भाव ७ ऋद्धियोसे है जो तपस्वियोंको प्राप्त हो जाती है । चूंकि शक्तिका प्रयोग हस्तके द्वारा होता हैं इसलिये इन सात शक्तियोंको अग्निके सात हस्त माना है । हाथका अर्थ कर्तव्यका भी होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार आर्योंके उद्देश हूं । इनके अतिरिक्त कर्मोंको नष्ट करना, पुण्यकी बृद्धि करना और स्वर्गके सुखको प्रदान करना भी तपश्चरण द्वारा प्राप्त होते हैं। यह सब अग्निके सात हाथ है ।

३—सात जिह्वा-अग्निकी, पांच इन्द्रियां, मन और बुद्धि है जिनको तपकी अग्निमे स्वाहा या भस्म करना है ।

४—चूँकि तपस्या करने से आत्माके ईश्वरीय गुण प्रकाशित होते हैं इसलिये अग्निको देवताओं (=ईश्वरीय गुणों) का पुरोहित कहा गया है जो उसके आह्वानसे आते हैं ।

५—पुण्य और पाप दोनों बन्धन अर्थात् आवागमनके कारण हैं, जिनमेंसे पुण्यसे हृदयग्राही और पापसे अरुचिकर योनियाँ मिलती हैं । इन दोनोंको मुमुक्षुको शुद्ध आत्मध्यान (समाधि) के लिये छोड़ना पड़ता है, इसलिये अग्निको भक्ष्य (पुण्य) और अभक्ष्य (पाप) दोनोंका भक्षण करनेवाला कहा है ।

६—अग्निका भोजन इच्छायें हैं, अर्थात् मनको मारना है, क्योंकि तपस्याका भाव इच्छाओंके त्यागका है । इच्छाओंके नाश करने से आत्माके ईश्वरीय गुण और विशेषण प्रगट और पुष्ट होते हैं ।

अलंकारकी भाषामें इन ईश्वरीय गुणोंको देवता कहते हैं, इसलिये अग्नि पर (इच्छाओंका) बलिदान चढ़ाने से देवताओंकी पुष्टि होती है ।

अंततः वैदिक देवालयकी रचना (तरतीब) से स्पष्टतया निम्न-लिखित भाव प्रगट होते हैं:—

१—हर व्यक्ति अपनी सत्तामें ईश्वर है अर्थात् जीवात्मा ही परमात्मा है ।

२—शुद्धात्मा पूर्ण परमात्मा होता है, क्योंकि वह सर्वज्ञतासे, जो परमात्मापनका चिह्न है, विशिष्ट होता है ।

३—जीवका परमात्मापन उसके प्रकृति (पुद्गल) से संयुक्त होने के कारण दबा हुआ है ।

४—तपस्या वह मार्ग है जो पूर्णता और परमात्मापनको पहुँचाता है ।

इस प्रकार वेदोंके देवी देवताओंकी कथाओंमें जीवन विज्ञानके कतिपय वलिष्ठ नियमोंको ही अलंकारकी भाषामें प्रस्तुत किया गया है ।

मैंने कर जोड़कर कहा—गुरुजी ! आपकी वाणीने आज मेरे हृदयके अन्धकारको नष्ट करके उसके स्थानमें ज्ञानका प्रकाश भर दिया । अब मैं यह बात भली प्रकार समझ गया कि वेदमंत्रोंका वास्तविक भाव निरुक्त अलंकारादि वेदके अंगोंको जाने बिना समझमें नहीं आ सकता है । परन्तु क्या ही उत्तम लेखनशैली है कि थोड़ेमें ही सब कुछ कह दिया है । वास्तवमें सागरको बूंदके अन्तर्गत करना इसीको कहते हैं । धन्य है उस काव्य-रचनाको जिसमें यह विशेषता पाई जावे । धन्य है उस ज्ञानको जो मोक्षका सच्चा दाता है । यथार्थमें अपनी आत्माके अतिरिक्त मोक्ष कहां से मिल सक्ती है । मोक्ष तो

स्वयं अपना स्वरूप ही है, बाहरसे कोई कैसे दे सक्ता है। आपको धन्य है कि आपने क्षणमात्रमें मेरी अज्ञानताको दूर कर दिया और मुझे मोक्षका पात्र बना दिया। अब मेरा संसार निकट आ गया और अब मैं आपके मुखारविन्दसे अग्निके स्वरूपको सुन कर यह भी अच्छी तरह से समझ गया कि **भिन्न २ देशोंमें अग्निकी** पूजा क्यों की जाती है। फेरोंके समय भी अग्नि देवताकी पूजाका यही अर्थ है कि दुल्हा दुल्हन तपको साक्षी बनाते हैं और यही उनका प्रण होता है कि सांसारिक विषय सेवनके समय भी यह बात सदा ध्यानमें रक्खेंगे कि तप ही जीवनका उद्देश है, और उसके नियमोंको किसी प्रकार भंग न होने देंगे। आपको धन्य है कि आपकी कृपाद्वारा मैं सहजमे ही ये सब भेद समझ गया। अब मेरी अभिलाषा गणेशजीका स्वरूप जानने की है जिनकी पूजा हिन्दुओंमे और सब देवताओंसे पहिले, कार्यके आरम्भमे होती है।

गुरुजीने कहाः—तेरी बुद्धि तीव्र है इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। सुन! गणेशजीका स्वरूप इस प्रकार है:—

१—वह चूहे पर सवार होता है।

२—उसके शरीरमें मानुषिक देहमें हस्तीकी सूंड़ जुड़ी हुई है।

३—वह देवताओंमें सबसे छोटा है।

४—परन्तु जब उसका आदर कार्यके प्रारम्भमें न किया जाये तो सबसे अधिक खोटा है।

५—वह लड्डू खाता है।

६—उसका नाम एकदंत है, क्योंकि उसकी सूंड़में दो दांतोंके स्थान पर एक ही दांत है।

इस बालक देवताका पता इस कालमें किसी जिज्ञासुको नहीं लगा,

परन्तु इसका भाव धार्मिक बुद्धि या समझ है जैसा कि निम्न सदृशताओंसे प्रगट है।

१—चूहा जो सब पदार्थोंके काट डालने के कारण अधिक विख्यात है उस ज्ञानका चिन्ह है जिसको एनेलिसिस (Analysis=तत्तव निकासविद्या) कहते है।

२—गणेश जिसका शरीर मानुषिक देह और हाथीकी सूंड़से जुड़कर बना है स्वयं संयोग आत्मिक (Synthesis) ज्ञानकी मूर्ति है।

३—सत्य वैज्ञानिक बुद्धि देवताओं (दैविकगुणों) में सबसे कम उमरवाला (बच्चा) है, क्योंकि वह आवागमनके चक्रमे सदैवसे घूमने वाले आत्माको जब वह मोक्ष पाने के निकट होता है तब ही प्राप्त होती है।

४—यद्यपि धार्मिक बुद्धि देवताओंमें सबसे छोटी है, वह इस बात पर हठ करती है कि कार्यारम्भमें उसका पूजन किया जावे, क्योंकि विचारपूर्वक कार्य सम्पादन न करने से अवश्य नाश होता है।

५—लड्डूका भाव बुद्धिके फल परमानन्दसे है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष स्वाभाविक रीतिसे परम सुख (मिठाई) को भोगते हैं।

६—एकदंतका संकेत अद्वैतवादके नियम 'एको ब्रम्ह द्वितीयो नास्ति' की ओर है। अर्थ यही है कि हर जीवके लिये स्वयं उसकी आत्मा ही वास्तवमें अकेला आराध्य परमात्मा है।

यह हृदयग्राही मूर्ति गणेशजीकी है।

मैंने कहाः—गुरुजी! आपने बड़ी कृपाकी कि गणेशजीके अद्भुत भावको मुझ पर प्रगट किया। अब मैं यह भी समझ गया कि कोई कोई व्यक्ति गणेशजीको नेता कैसे मानते हैं। वास्तविक नेता बुद्धि ही है। वह ही सब नेताओंकी नेता है और हरएक कार्यके

आरंभमें उसीको निमंत्रण करना हमारा आवश्यक कर्तव्य है। उससे बढ़कर और नेता नहीं हो सक्ता। इसीलिये उसकी प्रेरणा है कि और सब देवताओंसे पहिले उसकी (याने गणेशजीकी) पूजा करनी चाहिये। आपकी शिक्षा द्वारा कुल देवताओंका पता स्वयं सहजमें ही चल जाता है और उनके स्वरूपके समझने में अब कुछ कठिनाई मुझे नहीं पड़ेगी। परन्तु अब कृपा करके यह बताइये कि इस भारत देशमें सत्य विज्ञानके होते हुये भी मतभेद क्यों पड़ गये? और दर्शनोंमें पारस्परिक विरोध क्यों पाया जाता है? ताकि मेरे हृदयको शांति हो।

गुरुजीका उत्तरः—यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है। इसके समझने में बड़े २ बुद्धिमान चक्करमें पड़कर उलझ गये हैं। इसका समाधान इस प्रकार है। दुनियामें प्राचीन दो ही धर्म अर्थात् जैन धर्म और वेदोंका धर्म हैं। शेष सब धर्म इन दोनोंके पश्चात् के हैं। इस बातको वर्तमान कालके सब बुद्धिमानोंने भी मान लिया है। वेदोंमें ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन है। जैनमत और वेदोंके मतका ठीक सम्बन्ध वही है जो विज्ञान और अलंकारका हुआ करता है। वास्तवमें सूक्ष्म दृष्टिसे देखने से इनमें कोई भेद नहीं है। स्थूल दृष्टि वालेको जो वेदके मन्त्रोंके यथार्थ भावसे अनभिज्ञ हैं भेद दीख पड़ता है। षट् दर्शनोंमेंसे कोई भी अधिक प्राचीन नहीं है। दर्शनोंके पारस्परिक विरोध दार्शनिकोंकी बुद्धियोंके कारणसे है। बौद्धमत अनुमानतः ढाई हजार वर्ष हुये भारतवर्षमें स्थापित हुआ था, परन्तु शून्यवादकी नींवपर निर्धारित होने के कारण वह इस देशमें जड़ नहीं पकड़ सका, तिसपर भी एक समय सारे देशमें इस कारण से फैल गया था कि इसमें तपकी कठिनाई कुछ हलकी कर दी गई है। बौद्ध-

मतके पश्चात् वहुतसे मतमतान्तर समय समयपर चलते रहे और जैसा जिसकी समझमे आया वैसा उसने अपने लिये मत बना लिया, परन्तु धर्मका असली स्वरूप वही है जो तुझको बताया गया है।

तीसरा परिच्छेद।

"अन्य प्रचलित मत"

मैंने कहा—भगवन्! मैने आपके कथनद्वारा वेदकी व्यवहरित तथा अलंकृत भाषाको समझ लिया। अब मुझे कोई संदेह इस विषयमें वाकी नहीं रहा। परन्तु अब कृपया यहूदियोंके मतके रहस्यको मुझपर प्रगट कीजिये। आपके मुखारविन्दसे इसके सुनने की इच्छा है।

गुरुजीने कहा:—यहूदियोंके मतका रहस्य एक कहानीद्वारा ही विदित हो सकता है, जो इस भाँति है। आदम और हव्वाको ईश्वरने अदनके वागमे, जिसको ईश्वरने बनाया था, रक्खा। इस बागमे अनेक पेड़ हैं परन्तु बागके बीचमें दो वृक्ष हैं, जिसमेंसे एक नेकी और बदीके ज्ञानके फलका वृक्ष है और दूसरा जीवनका वृक्ष। यहाँ मनुष्य (आदम) ने ईश्वरी आज्ञाकी अवज्ञा की और साँप (शैतान) के बहकाने पर पहिले प्रकार अर्थात् नेकी और बदीके ज्ञानके वृक्षका फल खाया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने साथी हव्वा समेत जो इस पापमें सम्मिलित थी और पश्चातमे उसकी स्त्री हुई, बागसे निकाल दिया गया। इस अवज्ञाके फलस्वरूप मृत्युने भी आदमको आन घेरा। आदमके पहिले दो पुत्र हाबिल और कायन हुए, इनमेंसे कायनने अपने भाईको मार डाला। इस कारण ईश्वर (जेहुआ) कायनपर गुस्से हुआ और वह पृथ्वी पर कार्यहीन फिरने लगा। इसके पश्चात आदमके एक और पुत्र

उत्पन्न हुआ जिसका नाम उसने सेत रक्खा। सेतका एक पुत्र एनोस हुआ। उसके समयसे लोग जेहुआ (ईश्वर) का नाम लेने लगे—अपने आपको जेहुआके नामसे कहने लगे। यह रहस्यपूर्ण कथानक यहूदी मतके भावको दर्शाने को यथेष्ट है। इस कथाका भावार्थ इस भाँति है:—

१—बाग अदन जीवके गुणोंका अलंकार है, अर्थात् इसमे जीवको बाग और गुणोंको पेड़ोंसे संकेतित किया गया है।

२—पेड़ोमे जीवन और नेकी व बदीके बोधके दो पेड़ मुख्य हैं अतएव वह बागके मध्यमें पाये जाते है।

३—आदमसे भाव उस जीवसे है जिसने मनुष्यकी योनि पाई है अर्थात् जो मानुषिक योनिमें है।

४—हव्वासे भाव काम याने विषय सुखका है। यह जीवका ही विकार है और जागृत अवस्था में प्रगट हो जाता है। इसीलिये कहा है कि ईश्वरने हव्वाको आदमकी पसली मेंसे उसके सोते समय बनाया।

५—सब प्राणियेंमे केवल मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है और इसलिये धार्मिक शिक्षाका वही अधिकारी है। पशुओंको बुद्धिकी कमी और शारीरिक तथा मानसिक न्यूनतायें मोक्षमें बाधक होती है। स्वर्ग और नरकके निवासी भी तपस्यासे वंचित रहने के कारण मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते है। अतः मनुष्य ही केवल धार्मिक शिक्षाका अधिकारी है।

६—जीवन वृक्षका भाव जीवनसे है और धर्मज्ञान से भी है, और नेकी व बदीके ज्ञानका अर्थ संसारकी वस्तुओका भोगरूपी मूल परिणाम है।

७—नेकी-वदीके ज्ञानका फल (परिणाम) राग व द्वेष हैं, क्योंकि मनुष्य उस वस्तुकी प्राप्ति और रक्षाका प्रयत्न करता है जिसको वह अच्छा समझता है और उसके नाशका प्रयत्न करता है जिसको वह बुरा समझता है। अब यदि तुम नेकी और वदीकी वास्तविकता पर विचार करो तो तुमको ज्ञात होगा कि वह वास्तवमें कोई नैसर्गिक पदार्थ नहीं हैं और न सदैव एक अवस्थामे स्थिर रहनेवाली वस्तु हैं। वह तो केवल परस्पर संबंधित शब्द हैं। जैसे एक वृद्ध पुत्रहीन धनवान तो घरमें पुत्र उत्पन्न होने का हर्ष मनाता है, किन्तु वह निकटस्थ दायाद (भागीदार) जो उस धनवानके सतानहीन मृत्यु होने की बाट जोहता था, उस पुत्रके कारण दुःखमें डूब जाता है। तो भी बच्चा जिसके कारण एक व्यक्तिको हर्ष और दूसरेको दुःख होता है अपनी सत्तामें केवल एक घटना है। वह अपने माता पिताके लिये कल्याण और हर्षका दाता है और इसलिये नेक है। परन्तु उसके लिये जो उस बूढ़ेकी मृत्यु पर उसका धन लेने के लिये इच्छुक बैठा था, दुख और हताशताका कारण हो जाता है। एकके हृदयमें वह प्रेम और रागको उत्पन्न करता है और दूसरेके दिलमें रंज और द्वेषको। इस प्रकार राग और द्वेष नेकी और वदीरूपी ज्ञानके वृक्षके फल हैं।

८—राग और द्वेष इच्छाके दो साधारण विभाग हैं (रोचक वस्तुको अपनानेकी इच्छा=राग, और बुरी वस्तुको नष्ट करने की इच्छा=द्वेष है)। इच्छा ही कर्मबन्धन और आवागमनका कारण है जैसा कि पहिले दर्शाया गया है।

९—जीव इस कारण कि वह एक असंयुक्त (अखण्ड) द्रव्य है अविनाशी है, परन्तु शरीरधारी होने के कारण जीवन और मृत्यु उसके साथ लगे हुये हैं। इस कारण इन्जीलमें कहा है कि "जिस दिन तू उसका फल खावेगा तू निस्संदेह मर जायेगा।"

यह स्मरण रखना चाहिये कि आदम उसी दिन नहीं मर गया जिस दिन उसने नेकी और बदीका ज्ञानरूप फल खाया, किन्तु उसके पश्चात् बहुत वर्षों तक जीवित रहा और ९३० वर्षका होकर मरा। अतः 'जिस दिन तू उसका फल खावेगा तू निस्संदेह मर जायगा"—इसका असली भाव यही हो सक्ता है कि वर्जित फलके खाने से मनुष्यको मृत्यु पराजित कर लेती है, अर्थात् राग द्वेष आवागमनके कारण हैं।

१०—सांपका भाव इच्छासे है, जिसके द्वारा बुरी प्रवृत्ति हुई। यह जीवको धर्मसे हटाकर बुरे कामोंकी ओर खींच लेती है।

११—विषयोंके इष्ट व अनिष्ट (नेक व बद) के ढूंढने में संलग्न प्राणी आत्मासे अनभिज्ञ होता है, अर्थात् वह इस बातसे विज्ञ नहीं होता है कि जीव स्वयं परमात्मा है और वह बाह्य देवताओंसे भय खाकर छिपता फिरता है।

१२—आदम पापका भार काम वासना (हववा) पर डालता है, और हववा कहती है कि वह इच्छाओंके बहकाने से गुमराह और पराजित हुई। यह बातें ज्ञान और विषय भोग (इच्छा) की आन्तरिक असलियतसे नितांत विधि मिलान रखती हैं, क्योंकि पथप्रदर्शक (शिक्षक) जो बुद्धि है वह इच्छाके

वशीभूत है। अतएव इस बातके निर्णयका अधिकार कि बुद्धि किस बातके लिये अपने कर्तव्यमे संलग्न हो, स्वयम् बुद्धिको प्राप्त नहीं है, प्रत्युत प्राणीकी इच्छाओं पर निर्भर है और उसकी बलिष्ठ इच्छाओंके अनुसार निर्णय होता है। बुद्धि तो जीवके पथको प्रकाशमान करने के लिए एक प्रकारकी लालटेन है। यह बात कि यह हमको देवमन्दिरकी ओर ले जावे अथवा जुयेखानेकी ओर, हमारी इच्छाओं पर निर्भर है, न कि स्वयं बुद्धि की मर्ज़ी पर।

२३—पतनके पश्चात् हाबिल और कायन आदमके संतान उत्पन्न होते हैं, जिनमेसे हाबिल भेड़ोंका चरवाहा और कायन पृथ्वीका जोतनेवाला है। यह दोनों अपने २ उद्योगोंकी भेट ईश्वरके सामने लाते हैं, परन्तु हाबिलकी भेंट स्वीकार होती है और कायनकी नहीं। कायन इसपर हाबिलको मार डालता है जिसपर खुदा उसे श्राप देता है। फिर सेत (नियुक्त) आदमका पुत्र उत्पन्न होता है और सेतका पुत्र एनूस है जिसके समयमें "मनुष्य अपने तईं परमात्माके नामसे कहने लगा" अर्थात् परमात्मा कहने लगा।

२४—इनमें हाबिल अंधविश्वास है जिसकी दृष्टि आत्माकी ओर है, परन्तु कायन तर्क वितर्ककी शक्ति है जो पुद्गलसे विवाहित है। इसलिये हाबिल भेड़ों (जीवका चिन्ह) का रखवारा है और कायन भूमि (पुद्गल) का जोतनेवाला है। भ्राताओंकी भेंटका मात्र उनके निजी उद्योगोंका फल (परिणाम) है, जिनमें हाबिलका उद्यम जीवनके विभागका उत्तमोत्तम परिणाम अर्थात् बर्रे (भेड़के बच्चे) का सा नम्रभाव

(उत्तम मार्दव) इत्यादि है। और कायनकी भेंट केवल पुद्गल ज्ञानका उत्तमोत्तम फल अर्थात् बिजलीकी रोशनी, ऐरोप्लेन इत्यादि हैं।

हाबिलका कर्तव्य स्वाभाविक रीतिसे ईश्वरको, जो परमात्मापनकी पूर्णता और आनन्दका आदर्श है, स्वीकार होता है। कारण कि उत्तम मार्दव इत्यादि ही वास्तविक मार्गकी पैढ़ी हैं। परन्तु तर्क वितर्ककी शक्ति और (अन्ध) विश्वास आपसमें स्वाभाविक विरोध रखते है, क्योंकि इनमेंसे एक आज्ञानुवर्ती और दूसरी परीक्षक है। इस हेतु हाबिलको कायन मार डालता है।

१—कायनको जो श्राप दिया गया है वह भी तर्क वितर्ककी शक्तिके साथ विधि मिलान रखता है। सेत जिसका अर्थ नियुक्तिका है वह अध्यात्मिक ज्ञान है जो मृत (अन्ध) विश्वासके स्थानपर स्थापित होता है। इस अध्यात्मिक तत्त्वज्ञानका पुत्र एनूस है जो अपने आपको ईश्वरके नामसे विख्यात करता है अर्थात् जो अपने तईं परमात्मा जानता है। यहूदियोंकी धार्मिक पुस्तकमें आदमके पाप (आज्ञाके उल्लंघन) का ऐसा भाव है वह किसी सर्वज्ञ परमात्माके एक तुच्छ मानवी दम्पतिके पापोंसे क्रोधित होने का इतिहास नहीं है और न कोई मनुष्य जातिकी जंगली अवस्थाकी गढ़ी हुई बालकहानी ही है; परन्तु सत्य अध्यात्मिक विज्ञानके कतिपय सिद्धांतोंका अलंकारकी भाषामें वर्णन है।

मैंने कहाः—गुरुजी! आपके मुखारविन्दसे यह व्याख्या सुनकर मेरे आश्चर्य और हर्षका ठिकाना न रहा। मैं तो अब तक यहूदियोंके

मतको पाखण्ड और यहूदियोंको कुपथगामी ही समझता था, और इस बाग़ और वृक्षोंकी कथाको गप्पाष्टक जानता था। आपकी शिक्षासे तो मेरे नेत्र खुल गये। यहूदी तो मेरे धर्मके भाई ही निकले। अब मेरा चित्त आपसे ईसाइयोंके मतका भेद जानने के लिये उत्कँठित हो रहा है। कृपा करके उसे भी वर्णन कीजिये।

गुरुजीने उत्तर दिया:—वास्तवमें यहूदियोंके मतका रहस्य बड़ा आश्चर्यजनक और हर्षदायक है और जब संसारके मनुष्य इसके असली भावको पूर्णतया जानने लगेंगे तो भेदभाव सर्वथा नष्ट हो जायगा और फिर सत्य वैज्ञानिक धर्मकी विजयपताका समस्त देशोंमें फहराने लगेगी। ईसाइयोंके मतका रहस्य भी इतना ही मनोरञ्जक है। उसको तू ध्यानसे सुन। ईसू नाम उस आत्माका है जो अपने परमात्मिक स्वरूपसे भलीभाँति विज्ञ हो गया है। इसका पिता ईश्वर और माता क्वाँरी कन्या मरियम है। ईश्वरका भाव परमात्मस्वरूप का है और कुमारी मरियमका भाव बुद्धिसे है जो किसी पतिके संयोग द्वारा नहीं वरन् ज्ञानद्वारा गर्भवती होती है। इसी कारण ईसूके पिताको अंग्रेज़ी की एक पुस्तकमें बढ़ई लिखा है। बढ़ई ज्ञानका अलंकार है। कारण कि वह वस्तुओंको काटता (तत्त्व निकास = Analysis) और जोड़ता (संयोग = Synthesis) है। मसीहका गर्भमें आना बिना मैथुन-पापके अर्थात् विशुद्ध रूपमें होता है, कारण कि यह गर्भ बुद्धिको होता है, किसी स्त्री पुरुषके संयोगसे नहीं। जब आत्माके परमात्मापनका विश्वास मनमें उत्पन्न होता है तब कहा जाता है कि ईसूका जन्म हुआ। बालक मसीह गुप्त रीतिसे उन्नति पाता रहता है जब तक उसके शत्रु नष्ट न हो जायें। भाव यह है कि, सम्यग्दर्शन (सत्य श्रद्धान) के उत्पन्न हो जाने के पश्चात् मसीहाई पद

उस समय तक प्राप्त नहीं हो सक्ता जब तक कि अभ्यंतर आत्मिक प्रवृत्ति दुर्व्यसनों, दुष्ट इच्छाओं और दुर्विचारोंको उपयुक्त रीत्या नष्ट न कर दे। फिर तपश्चरण करना पड़ता है, जिसके कारण कतिपय अद्‌भुत शक्तियां आत्माको प्राप्त हो जाती हैं। अब वह समय आ जाता है कि जब शिष्य प्रारब्धके चौराहे पर अपनेको जीवन और मृत्युकी शक्तियोंको हाथमें लिये हुये खड़ा पाता है, क्योंकि इन बलिष्ट शक्तियोंका सांसारिक उन्नतिके लिये प्रयोग करना ही आत्मोन्नतिकी जड़ काटना है—यही प्रलोभना है। इसी विषयमें इञ्जीलमे कहा गया है कि 'शैताननने ईसूको संसारके राज्य दिखलाये जो उसको सिजदा करने से प्राप्त हो सक्ते थे'। परंतु निर्वाणेच्छु (मुमुक्षु) साधु अब अपने इस इरादेसे कि वह अपने (वहिरात्मा) को मसलूब (नष्ट) करे, नहीं बदल सक्ता है। अस्तु वह अपनी सलीब (सूली) अपने साथ लिये फिरता है और गोल गोथाके स्थान पर (जिससे भाव खोपड़ीके स्थानसे है) मसलूब होता है। भाव यह है कि वह अब अपने शरीरको सूली की भांति समझता है। और खोपड़ीके विशेषार्थ का संकेत सहस्रार चक्रकी ओर है जो ध्यानके लिये एक मुख्य स्थान है।

यथार्थ जीवनमें जो एकदम कसीर (महान) और प्रतापी है प्रविष्ट होने के कारणसे जो बहिरात्मा (शारीरिक व्यक्तिपन) को मसलूब किया जाता है, उसका फल इस प्रकार प्रगट होता है:—

१—चट्टानोंका फटना।

२—सूर्यका अन्धकारमय हो जाना।

३—मन्दिरके पड़देका ऊपरसे नीचे तक फट जाना।

४—क़ब्रोंका खुल जाना और मुर्दोंका दिखाई देना।

यह सब गुप्त समस्यायें है जिनका अर्थ इस कालमें प्रथम बार तुझको बताया जाता है।

१—चट्टानोके फट जाने से अभिप्राय कर्मोंके कठोर (लोहेके से) बन्धनोका टूटना है, जो आत्माके अभ्यन्तर (सूक्ष्म) शरीरमें पड़े हुये हैं।

२—सूर्यके अन्धकारमय होने का भाव सीमित मनके कार्यालयके बन्द हो जाने से अर्थात् इन्द्रियो और बुद्धिके नष्ट होनेका है। सर्वज्ञताके प्रगट होने पर यह सब नष्ट हो जाते है और फिर इनकी आवश्यकता नहीं रहती है। यह अवश्य है कि मनुष्य इन्द्रियों और बुद्धिको अति आवश्यक उपयोगी पाते हैं, परन्तु वास्तवमे यह आत्माकी यथार्थ एवं स्वाभाविक सर्वज्ञताके पूर्ण सर्वमय प्रकाशको रोकनेवाले हैं। इनका नष्ट होना, जब वह तपश्चरणकी पूर्णताके कारणसे हों, अति धन्य है। कारण कि तत्क्षण ही भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालोका पूरा पूरा ज्ञान उनकी पराजयपर प्राप्त हो जाता है, यद्यपि अन्य सर्व स्थानोंपर उनका नष्ट होना अवश्य ही एक महान संकट है।

३—मन्दिरके पर्देका फटना भी एक गुप्त शिक्षा है। जो पर्दा कि फटता है वह किसी हाथोंसे बनाये हुये चूने और ईंटके मन्दिरका नहीं है सुतरां आत्माके मन्दिरका है। अभ्यंतर प्रकाशके ऊपर जो पर्दा पड़ा हुआ है उसके हटने से यही भाव है जिससे परमात्मपनका यथार्थ प्रकाश हो जाता है, न कि एक चूने अथवा पत्थरके बने हुये मन्दिर वा उसके किसी भागके नष्ट होने से। आत्मिक प्रकाश इस अभ्यंतर पर्देके फटनेका तत्कालीन फल है।

४—परन्तु सबसे सुंदर अलंकार जो इस स्थानपर व्यवहृत हुआ है वह क़ब्रोंके खुल जाने का है। जिस वस्तुसे यहाँ अभिप्राय है वह प्रकट रूपमें किसी क़बरस्तानकी क़ब्रोंकी पंक्तियाँ नहीं हैं जिनमें मुर्दे गढ़े पड़े रहते हैं, और न मुर्दोंकी सड़ी हुई लाशोंके किसी प्रवल शक्तिसे फेंके जाने और जनतामें प्रगट होने से है, सुतराँ मानुषिक स्मरणशक्तिके क़ब्रस्थानसे है, जहाँ भूतकालकी घटनाये और संस्कार उसी प्रकारसे दफ़न पड़े रहते हैं जैसे पृथ्वीके भीतर मुर्दे। यह शिक्षा पिछले जन्मोके हालातके याद आने को, जो तपश्चरण द्वारा सम्भव है, प्रकट करती है।

ईसाके शुभ जीवनका यह असली भाव है जो मैंने तुझे बताया। यहाँ भी मतभेद व धर्म विरोध जो इंजीलकी शिक्षा और आर्योंके धर्मों में मिलता है, वह केवल अलंकारोंके प्रयोग और उनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोके कारणसे है।

मैंने कहा:—भगवन! आजकलके ईसाई तो अलंकारको स्वीकार नहीं करते हैं। क्या इञ्जीलमें कहीं इसका प्रमाण है कि इञ्जीलकी भाषा अलंकारयुक्त है? यदि हो तो कृपया प्रगट कीजिये।

गुरुजीका उत्तर:—हा! यह प्रश्न बहुत उचित है। कई स्थानोपर इञ्जीलमे संकेत किया गया है कि कहनेवालेका भाव गुप्त है। और यदि तू स्पष्ट प्रमाणका इच्छुक है तो देख! इसी ग्लेटियंस की इञ्जीलके चौथे बाबमें पौलस रसूलने स्पष्ट शब्दोंमें स्वयं इब्राहीम व उनकी दो स्त्रियों और पुत्रोंके बारेमे कहा है कि वह एक अलंकार है। इब्राहीम व उनकी स्त्रियों पुत्रोंके बारेमें ईसाईयों, यहूदियों और मुसलमानों तीनों ही का यह दृढ़ विश्वास है कि यह यथार्थरूपमें ऐति-

हासिक हुये हैं। परन्तु सेन्ट पौलसने इस विश्वासपर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। इसी ग्लेटियंसकी इञ्जीलमे बताया गया है कि इब्राहीमकी व्याहता स्त्रीका अर्थ शुद्ध आत्मद्रव्यसे है और दासीका अर्थ कर्मोंके पुञ्जसे है। व्याहता स्त्रीके पुत्रको मालिक ठहराया है, और दासीपुत्रके लिये घरसे निकाल देने की आज्ञा है। भावार्थ यह है कि, बहिरात्मा अर्थात् शारीरिक व्यक्ति ध्यानमेसे निकाल देने योग्य है और उसके स्थानपर स्वात्मतत्त्वको विराजमान करना है। तुमने सुना होगा कि शास्त्रोंमें आत्मा तीन प्रकारकी बतलाई गई है। (१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा।

इनमें बहिरात्मासे अभिप्राय ऐसे व्यक्तिसे है जो अपने आपको पौद्गलिक शरीर ही समझे। अन्तरात्मासे मतलब जीवात्मासे है जो जीवके साथ लगी हुई अशुद्धतासे छूट कर शुद्ध आत्मस्वरूपको धारण करता हुआ परमात्मपदमें विराजमान हो जावे। ग्लेटियंसकी इञ्जील (Galatians IV.21-31) का भाव यही है कि दासीके पुत्र अर्थात बहिरात्माको निकाल दो और अन्तरात्माको शुद्ध करके स्वयं परमात्मा बन जाओ।

मैंने कहाः—गुरुजी! आपने बहुत सत्य अर्थ बताया। मैंने भी स्वयं 'मत्तीकी इञ्जील'के पांचवें बाबमें जीवोंके लिये यह शिक्षा पढ़ी है कि उनको परमात्माकी पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये। अब आपके मुखारविन्दसे ईसूकी अलङ्काररूप जीवनीका भाव समझ कर मुझे अति हर्ष हुआ। कृपा करके इञ्जीलमे वर्णित मुर्दोंसे जी उठने की शिक्षाका भेद भी मुझे बता दीजिये ताकि मैं भली प्रकार समझ लूं।

गुरुजीने कहाः—पुत्र! तेरी समझ बड़ी उत्तम है। यह बड़ी कठिन समस्यायें हैं जिनको तू जानना चाहता है। इनके चक्रोंमें

पड़ कर लाखों नहीं वरन् करोड़ों मनुष्य कुमार्गगामी हुये और दुर्गति को प्राप्त हुये। तेरी भक्ति और बुद्धिकी निर्मलताको देखकर तुझे समझाने को स्वयं दिल चाहता है। ले ध्यान देकर सुन! अलङ्कार की भाषामें मुर्दा ऐसे जीवको कहते हैं जो ज़िन्दा तो है परन्तु जिसे अपने वास्तविक स्वरूपका बोध नहीं है। ऐसे जीव आवागमनके चक्करमें नित्य मरते और जन्म लेते हैं। यही भाव उस इञ्जीलके वाक्यका है जो कहता है:—

"मुर्दोंको अपने मुर्दे गाड़ने दो"

इसमें शब्द मुर्दोंका अर्थ अज्ञानी और मुर्देका अर्थ ऐसे अज्ञानीसे है जो मर गया है। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि:—

"वह जो विषय भोगोंमें आशक्त हो चुकी है मुर्दा है यद्यपि वह जीवित है" (१-टिमोथी ५/६)।

अतः मुर्दोंसे जी उठने का अर्थ भी पारिभाषिक है और उसका अभिप्राय मुक्ति पाने से है। वर्तमान समयके लोग मुर्दोंसे जी उठने का अर्थ उल्टा पल्टा लगाते हैं और कहते है कि दुनियाके अन्तमें एक दिन तमाम मुर्दे जी उठेंगे और फिर कुछ लोग जिन्होंने बुरे काम किये हैं सदाके लिये नर्कमें डाल दिये जायेंगे और वह जिन्होंने अच्छे काम किये हैं स्वर्गमें रहेंगे और अपने स्त्री पुत्रों समेत रहकर वहां सुख भोगेंगे। यह मिथ्या कल्पना है जिसके खण्डन करने का स्वयं इञ्जीलमें प्रयत्न किया गया है और सदूकियों द्वारा एक काल्पनिक प्रश्न उठवां कर इस मसलेको साफ कर दिया गया है। वह प्रश्न इस भांति है कि:—कयामतमें एक अमुक स्त्री किसकी पत्नी होगी, जिसने इस जगत्तमें सात भाइयोंसे उनके एकके पश्चात् एकके मरजाने पर विवाह किया था? इसका उत्तर लूकाकी इञ्जील अध्याय २० आ० ३४–३६ में निम्न प्रकार दर्ज है:—

" इस जगतकी सन्तानमे विवाह शादी होती है, परन्तु जो लोग इस योग्य माने जायेंगे कि उस जगतको प्राप्त करें और मुर्दोंमेंसे जीवित हो उठें, वह विवाह नहीं करते और न उनकी शादी कराई जाती है और न वह फिर मर सकते है, कारण कि वह देवोंके सदृश है और ईश्वरके पुत्र है इस कारणसे कि वे क़यामतके पुत्र हैं। "

यहाँ यह प्रत्यक्ष रीत्या बताया गया है कि

(१) क़यामत प्रत्येक मनुष्यके लिये नहीं है, सुतराँ केवल उन्हींके लिये है जो उस जगत के पानेके और मुर्दोंसे जी उठने के योग्य माने जाते हैं।

(२) उस जगतमें विवाहकी रीति रिवाज नहीं है और—

(३) जो लोग मुर्दोंसे जी उठते हैं वह अमर जीवन पाते हैं और कयामतके पुत्र होने के कारण ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं।

परन्तु इनमेसे पहिली बात ही क़यामतके सिद्धान्तके सम्बन्धमें प्रचलित शिक्षाकी घातक है जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य योग्यताका ध्यान न रखते हुये जीवित किया जायगा। इञ्जील प्रकट रीत्या कहती है कि वह अवस्था केवल उन्हींके लिये है जो उसके योग्य समझे जायँगे। दूसरी बात सर्व साधारणके अक़ीदे (विश्वास) के और भी विरुद्ध है जिसके अनुसार स्त्रीपुरुष पौद्गलिक शरीरोंके साथ जी उठेंगे और वंश एकत्र किये जाँयगे। अब यदि मुर्दोंसे जीवित हुये मनुष्योंमें स्त्रीपुरुषका भेद होगा तो उनकी अवस्था उन विधवाओंकीसी होगी जिनको पुनर्विवाह करने की आज्ञा नहीं दी गई है और जिनके साथ ईसाई लोग, इस कारणसे कि बलात्कार उन पर जीवन भरका वैधव्य डाल देना अदया और अन्यायका काम है, अत्यन्त अनुकंपा प्रगट

करते हैं। हम पूछते हैं कि क़यामतके बादके जगतके उन मनुष्योंकी क्या अवस्था होगी जो पुरुष और स्त्री तो होंगे परन्तु जो विवाहके सुखसे वञ्चित रक्खे जाँयगे? क्या इन्द्रियका अवयव जब कि वह अपना काम न कर पावे, असह्य दुःखका कारण न होगा? और ऐसी प्रत्येक आत्मासे, जिसने कभी किसी प्रकारके नियम और क्रियाका पालन नहीं किया है और जो तपस्याके तंगद्वार और संकुचित मार्गमेंसे नहीं, सुतराँ किसी मोक्षप्रदायककी कृपा व अनुग्रहसे ईश्वरके राज्यमें प्रविष्ट हुवा है, यह आशा करना कि वह एक जैन अथवा हिन्दू विधवाके सदृश सदैव परहेज़गार बना रहेगा, व्यर्थ है। हाँ! ऐसी ही कठिनाइयाँ हैं जिनमें अवैज्ञानिक विचार पड़ा करता है जब वह घटनाओंके विपरीत मत देने पर उतारू होता है।

तीसरी बात, अर्थात उठाये गये मनुष्योंका नित्य जीवन पा लेना भी इतना ही आश्चर्यजनक है। साँसारिक जीव आत्मद्रव्य और पुद्गलका समुदाय है और समुदायका यह लक्षण नहीं है कि वह अविनाशी हो। और न अमर जीवन कोई ऐसा पदार्थ है कि जो कहीं बाहरसे मिल सके। यथार्थता यह है कि क़यामतका सिद्धान्त वास्तवमें आवागमनका सिद्धान्त है यद्यपि वह गुप्त समस्यावाली भाषामें छुपाया गया है। यहूदी लोग इससे अपरिचित न थे और फ़रीसी लोग प्रकट रीत्या इसको मानते थे। परन्तु क़यामत के दिवसके ईश्वरका यथार्थ प्रारम्भ हिन्दुओंका देवता यमराज है, जो जीवोंके मरने पर उनके पुण्य और पापका परिमाण लगाता है और उनको उनके योग्य स्थानोंपर भेज देता है।

यह यमराज़ कर्म (प्राकृतिक नियम) का चित्र (रूपक) है, जो इस कारणवश कि वह विभिन्न द्रव्यों और उनके प्राकृतिक गुणों

और शक्तियोंसे उत्पन्न होनेवाला परिणाम है, किसी दशामें भूल नहीं कर सक्ता है। परंच मुर्दोंके एक नियत दिवसपर जगतके अन्त में जी उठने की कल्पना इस सिद्धान्तसे किसी धर्ममें भी सम्बंध नहीं रखती थी। यद्यपि कतिपय शास्त्रोंका उपदेश बाह्य शाब्दिक अर्थोंमें इस प्रकारके भावको खींच तानकर स्वीकार कर सक्ता है। यथार्थ भाव यह था कि प्रत्येक व्यक्तिके मरने पर उसकी आकृवत (भविष्य) का निर्णय कर्मके नियमसे, जो मृत्युके देवताके रूपमें बांधा गया है, स्वतः हो जाता है। और वह एक नवीन जन्ममे द्वितीय बार शरीर धारण करने के लिये प्राकृतिक आकर्षणसे पहुंच जाता है। यह चक्र जन्म मरणका निर्वाण प्राप्ति तक, जिसका अर्थ मृत्युपर विजय पाना अर्थात् मुर्दोंसे जी उठना है, चालू रहता है। मुर्दोंसे अभिप्राय उन समस्त आत्माओं से है जो आत्मावस्थामें जीवित नहीं हैं, जैसा कि अभी बताया जा चुका है।

इञ्जीलकी किताब मुकाशिफ़ात [अ० १।१०] का भी ऐसा ही भाव है कि जहां एक पूर्णात्मा (जीव) के मुखसे कहलवाया है कि:—

"मै वह हूं जो जीवित रहता है और मर गया था और देख! मैं अनन्त समय तक जीवित रहूंगा। आमीन! मौत और दोजखकी कुञ्जियां मेरे पास हैं।"

अस्तु: मुर्दोंसे जी उठने अथवा क़यामतका अर्थ मृत्युपर विजय प्राप्त करना है। अर्थात उस कमताईके दूर करने से है जो आत्मपतनके कारणवश उत्पन्न होती है। यह कमताई राग और द्वेषके कारणसे है (जिनको कवि-कल्पनामे पाप और पुण्यका फल बांधा गया है) और चारित्रको ठीक करके मृत्युको परास्त करने से दूर हो जाती है, जब कि वह मनुष्य जो "उस जगतके पाने और मुर्दोंसे जी उठने के योग्य ख्याल किये जाते हैं" फिर कभी नहीं मर सक्ते।

इस प्रकार मृत्युका साम्राज्य उस प्रदेशमें सीमित है जहां राग और द्वेष अर्थात व्यक्तिगत प्रेम और घृणा पाये जाते हैं। राग और द्वेष कर्मोंके बन्धन और आवागमनके वास्तविक कारण है। उनसे आत्मा और पुद्गलका मेल होता है जिससे आत्माकी शक्ति निस्तेज पड़ती है। यहूदियोंके मर्म ज्ञानमें भी आवागमनका सिद्धान्त माना गया है। इस बातको वर्तमान खोजियोंने भी माना है किः—

> "कब्बालह (गुप्त समस्या) के फ़िलसफाके ज़मानेमें यहूदी आवागमनके सिद्धान्तको स्वीकार करते थे और इस बातको मानते थे कि आदमकी आत्माने दाऊदमें जन्म लिया था और भविष्यमें मसीह होगी।"

(The nature of Man pp. 143/144.)

सच तो यूँ है कि आवागमनका सिद्धान्त यहूदियोंके मतके प्राचीन प्रारम्भिक शिक्षामें गर्भित है। अब तू मृत्युका स्वरूप सुन! मृत्यु आत्मा और पुद्गलके मेलका फल है। इस कारणसे कि वह दोनों ही स्वतंत्रताकी अवस्था (निज स्वरूप) में अविनाशी है। क्योंकि वह दोनों अर्थात् विशुद्ध आत्मद्रव्य और पुद्गलके परमाणु असंयोजित (अखण्ड) हैं और इसलिये नष्ट होने के अयोग्य हैं। अस्तुः जो कोई अमर जीवनका प्राप्तेच्छु है उसको चाहिये कि वह उसको अपने ही स्वभावमें अपनी आत्मासे उस वाह्य पुद्गलके एक एक परमाणुको, जो उससे लिपटा हुआ है, पृथक् करके दूंढे। यह एक ही प्रकारसे सम्भव है अर्थात् केवल तपस्या द्वारा। जब कोई मुमुक्षु सर्व प्रकारके राग और द्वेषसे रहित हो जाता है तब कहा जाता है कि उसने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली यद्यपि वह इस संसारमें मनुष्योंके मध्य जीवित रहता है जब तक कि उसका

शरीर पूर्णतया उससे विलग नहीं हो जाता। उस कालमे वह जीवन मुक्त कहलाता है। अतः जब वह सर्व पौद्गलिक सम्बन्धोंसे छुटकारा पाता है तो वह तत्क्षण लोकके शिखर पर विशुद्ध नूर (दिव्य आत्मद्रव्य) के रूपमे पहुंच जाता है और दि मोस्ट हाई (The Most High=परमोत्कृष्ट परमात्मा) कहलाता है। क्यों उस जगतमें विवाह नहीं होता है और न कराया जाता है? इसका कारण यह है कि उस जगतमें लिङ्ग-भेद ही नहीं है। लिंग-भेदका सम्बन्ध शरीर से है न कि आत्मासे। इस कारणवश एक ही आत्मा आवागमनके चक्करमें कभी पुरुष और कभी स्त्रीका रूप धारण करता है। परन्तु जब वह इस संसार-सागरके दूसरे किनारे पर पहुंच जाता है तो उसके विषय प्रसंगके ख्यालात और वह पौद्गलिक शरीर जो लिंग-भेदकी इन्द्रियोंके लिये आवश्यक है, दोनों ही तप और ज्ञानकी अग्निसे जल जाते हैं। यही कारण है कि निर्वाणमें जीव न विवाह करते हैं और न उनका विवाह कराया जाता है। अस्तु: "ईश्वरके पुत्र" (Sons of God) वह विशुद्ध और पूर्ण परमात्मा है जिन्होंने अपने उच्च आदर्शको प्राप्त कर लिया है और जो परमात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने कर्मोंकी कैद और उनसे उत्पन्न होनेवाले बारम्बारके जन्म मरणके फन्दोंको तोड़ डाला है और अब लोकके शिखरपर मिथ्यात्व और उसके परम मित्र मृत्युके विजयीके तौर पर जीवित हैं। वह ईश्वरके पुत्र कहलाते हैं इस कारणसे कि उन्होंने परमात्माकी पूर्णताको प्राप्त किया है जो जीवनका अन्तिम ध्येय (अभिप्राय) है। मानो परमात्मापन अथवा खुदावंदीको उत्तराधिकारमें पाया है। विशुद्ध पूर्ण आनन्द अर्थात् कभी न कम होने वाला सदैवका परमानंद, मृत्युको परास्त करनेकी शक्ति अर्थात्

अमरजीवन, अनन्तशक्तिमत्ता, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन जिनको जैनधर्मके शास्त्रोंमें अनंत चतुष्टय कहते हैं उन विशुद्ध आत्माओंके गुण हैं। वह मनुष्यजातिके यथार्थ शिक्षक हैं और ज्ञान अर्थात् धर्मके यथार्थ श्रोत्र हैं। उनके मुख्य गुण इञ्जीलमें निम्न प्रकार लिखे हैं:—

(१) आत्मिक योग्यता, जिससे वह उस जगत अर्थात् निर्वाण को पाते है।

(२) लिंगभेदसे रहित होना अर्थात् सर्व प्रकारके शरीरों से छुटकारा।

(३) मृत्युसे मुक्ति और

(४) परमात्मापनकी प्राप्ति।

इसी कारणसे उनके लिये यह भी कहा गया है कि वह फिर मर नहीं सक्ते है।

मैंने कहा:—गुरुजी! आपके वचनामृतको मैंने खूब दिल खोल कर पिया, और उससे जो तृप्ति व शान्ति मुझे प्राप्त हुई है उसका वर्णन वाणीद्वारा नहीं हो सक्ता है। यह मनुष्य जातिके दुर्भाग्य हैं कि ऐसी उत्तम शिक्षा इस प्रकार सदियों (शताब्दियों) छिपी हुई पड़ी रही, किसी को उसके यथार्थभाव का पता न लगा। परन्तु प्रतीत होता है कि अब हमारे दुर्भाग्यका अन्त समय आ गया, क्योंकि आज आपने स्पष्ट रीतिसे इन समस्याओंका रहस्य प्रकट कर दिया। अब मैं उस मर्मको भी जानना चाहता हूं कि जो पिता पुत्र और पवित्र रूहकी त्रिमूर्ति से सम्बन्ध रखता है। कृपया यह भेद भी मुझे बताइये ताकि मेरी चिंता दूर हो।

गुरुजीने उत्तर दिया:—यह सत्य है कि वर्तमान कालके मनुष्य

बड़े दुर्भागी हैं। वास्तवमें गुप्त रहस्योंमे माणिक ही भरे हुये हैं, परन्तु समयके प्रभावसे उनके जाननेवाले नहीं रहे। अब वह माणिक सर्व स्थानोंमे कोयलाफरोशोके हाथोंमें पड़ गये हैं, जिनको वह कोयले के टुकड़े ही भासते हैं। इञ्जील की त्रिमूर्तिका भेद भी बड़ा मनोरञ्जक और प्राचीन है। पिता पुत्रकी कल्पनाका यथार्थ उत्पत्ति स्थान हिन्दूधर्म है। यह क्योंकर है सो अब तुझे बताते हैं। तूने सुन होगा कि एक समय इन्द्र देवताको सावित्री देवीने कुपित होकर श्राप दी थी कि वह अपने देश तथा शहरसे पृथक् हो जायगा और परदेशमें ज़ंजीरों द्वारा बन्धनावस्थाको प्राप्त होगा। तत्पश्चात् गायत्री देवीने इस श्रापको कुछ हलका किया था और यह वरदान दिया था कि इन्द्रका पुत्र उसको मुक्ति देगा। पिता पुत्रका मसला इस हिन्दू समस्याके समयसे प्रचलित है। भावार्थ इसका यह है कि इन्द्र देवता स्वयं प्राणीकी आत्मा है जो संसारी अवस्थामें अपने निज स्वभाव और परमात्मपदसे पतित कर्म रूपी ज़ंजीरोंसे जकड़ा हुआ आवागमनके चक्रमे देशदेशान्तरोंमें भ्रमण किया करता है। यही संसारी जीव इन्द्र है जो सावित्री देवीके श्रापको पूर्णरूपसे दर्शाता है, और इसी अमुक्त अपवित्र संसारी जीव अर्थात् इन्द्रमेंसे ज्ञान व तपके परिणामरूप जो शुद्ध परमात्मस्वरूप आत्मा प्रकट होता है वह अलंकारकी भाषामें उसका पुत्र कहा गया है। यह कारण है कि इन्द्र अपने पिताका पिता कहलाता है जिसका भाव तुझे पहिले बताया गया है। इञ्जीलकी अलंकारित परिभाषामें भी जीव सत्ता (Life) का नाम पिता है। इसी जीव सत्तामेंसे जो मुक्तरूपी पुत्र आत्माके निज शुद्ध स्वरूपको धारण किये हुये प्रगट होता है वह पुत्र है। और पवित्र रूह जो तीसरा अभिन्न मेम्बर इस

त्रिमूर्तिका है वह वैराग्यमयी भाव है जिनके द्वारा निज शुद्धात्मिक पवित्रता प्रगट होती है। यह भी तुझे समझ लेना चाहिये कि अँग्रेजी शब्द होलीका वास्तविक अर्थ पूर्ण बनाना है अर्थात् होली घोस्ट (पवित्रात्मा) वह विशेष वैराग्यमयी शक्ति है जो अपूर्ण संसारी जीवको परमात्मपदकी पूर्णता प्रदान करती है।

मैंने विनय की कि आज मेरे बड़े पुण्यका उदय हुआ है जो आपकी कृपासे मुझे ऐसे २ भेद जानने को मिले हैं। यह वह भेद हैं जिनके वर्णनके लिये बड़े २ योगीश्वरोंने अपनेमें शक्ति नहीं पाई, परन्तु आपकी कृपासे सहजमें ही मुझे यह अपूर्व ज्ञान प्राप्त हो गया। अब प्रतीत होता है कि मनुष्य जातिके भाग्य जाग उठे हैं और वह समय निकट आ गया कि अज्ञानका अन्धकार तत्क्षण ही दूर हो जावेगा। अब मैं दीन इस्लामके रहस्यको भी आपके मुखारविन्दसे सुनना चाहता हूं कृपा करके उसका भेद भी मुझ पर प्रगट कीजिये।

गुरुजीने उत्तर दियाः—इस्लाम, यहूदी और ईसाई मतोंसे पूर्णतया सम्बन्ध रखता है और उसमे यहूदी मतके कथानक अधिकांशमें स्वीकार किये गये है। आत्माके पतनका हाल जो अदनके बाग़की कथामें यहूदियोंकी पूज्य पुस्तकमे सिखाया गया है मुसलमान मतके संस्थापकने माना है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानोंपर भी कुरानशरीफ़में पूर्वके शास्त्रोंकी सत्यताको स्वीकार किया गया है। और वही नियम जो धार्मिक विज्ञानके स्तम्भ है मुसलमानोंके पूज्य शास्त्रमें भी पाये जाते हैं। सूरै ज़ारइयतमें स्पष्ट रीतिसे कहा गया है कि "मैं तुम्हारे अस्तित्वमें विराजमान हूं परन्तु तुम नहीं समझते हो।" इसका अर्थ यही है कि जीव स्वयं ही गुणोंकी अपेक्षा परमात्म स्वरूप है। स्वयं मोहम्मद साहबने कहा है 'ऐ मनुष्य! तू

अपनेको पहिचान'। एक अन्य स्थानपर यह भी कहा गया है कि जो अपने आपको जानता है वह .खुदाको जानता है। साधारण मुसलमानोंने कुरान शरीफ़को स्थूल दृष्टिसे ही पढ़ा, परन्तु प्राचीन सूफ़ियोंको बहुत कुछ अंशमें उसके असली भावका पता मिला था। सूफ़ी कवि फ़रीदुद्दीन अत्तारने साफ कहा है:—

"ता तु हस्ती ख़ोदाय दर ख़्वाबस्त,
तू न मानी चुं ओ शवद बेदार।"

इसका उर्दू भाषान्तर कवितामें ही इस प्रकार है:—

तेरी हस्ती है बाइस एक .खुदाके .ख्वाब गफ़लतकी,
रहे जब तू न आलममें तो वह बेदार हो जावे।

इसका अर्थ यही है कि जब तक यह अहङ्कारका पुञ्ज बहिरात्मा तुझमें विद्यमान है एक परमात्मा सुषुप्ति अवस्थामें है। जब इस बहिरात्माका अस्तित्व नष्ट हो जायगा तब वह जागृत होगा। दूसरा सूफ़ी कहता है कि:—

तजल्ली हास्त ह्क़रा दर नक़ाबे ज़ाते इन्सानी।
शहूदे ग़ैब गर ख़्वाही बजूब ईजास्त इम्कानी॥

मतलब यह है कि मनुष्यकी सत्तामें समस्त परमात्मिक गुण विद्यमान हैं, यदि तू उनका अनुभव करना चाहता है तो यहीं उनका अनुभव कर। काऽबे और बुतख़ाने क्यों जाता है? एक मुसलमान शायरका क़ौल है:—

ऐ क़ौम बहज्ज रफ्तह कुजाएद कुजाएद।
माशूक़ हमींजास्त बियाएद बियाएद॥
माशूके तो हमसाया तो दीवार ब दीवार।
दर बादियह सरगश्त. चराएद चराएद॥

आनाँके तलबगार .खुदाएद, .खुदाएद ।
हाजित बतलबे नेस्त .खुदाएद, .खुदाएद ॥

'ऐ लोगो ! हज्ज करने कहां जाते हो ? माशूक़ यहीं है, चले आओ, चले आओ । माशूक़ तो बिल्कुल तुम्हारा पड़ोसी ही है, दीवारसे दीवार मिली है । तुम बियाबानमें क्यों फिरते हो ?

'तुम जो .खुदाको ढूंढेते हो तुम .खुद .खुदाहो; तुम उसको व्यर्थ ही ढूढते हो ।' और तरारसे दूसरा शायर कहता है:—

यार पिनहांनस्त दर ज़ेरे नक़ाब ।
हमचुदरिया को निहां शुद दर हुबाब ॥
कश्फ़ दर मआनी बुअद रफ़ए हिजाब ।
बूद तो आमद बरुये तो नक़ाब ॥
परदह बरदारो जमाले यार बीं ।
दीदह वाकुन चेहरए इसरार बीं ॥

'यार नक़ाबके भीतर छिपा हुआ है, जैसे दरिया हुबाबमें छुप जाता है । अर्थके समझने से पर्दा उठ जाता है । तेरी ही हस्ती तेरे ऊपर नक़ाब बन गई है । पर्दा उठा और यारका जमाल देख; आंखें खोल और भेदको समझ' । एक और मुसलमानका वाक्य है:—

मनम् खुदा वो बआवाज़े बलन्द मी गोयम् ।
हरआं कि नूर देहद मेहरोमाह रा ओएम् ॥

इसका अर्थ भी यही है कि आत्मा ही स्वयम् परमात्मा है । इसी आशयको निम्नलिखित शेर (पद्य) भी प्रगट करते हैं:—

मूक़ामे रूह बर मन हैरत आमद ।
निशाँ अज़वे ब गुफ्तन ग़ैरत आमद ॥
तुई आशिक़ बज़ाहिर दर तरीक़त ।
तुई माशूक़ बातिन दर हक़ीक़त ॥

(३) गर बकुंनह खुद तुराव्राशद रहे ।
अज़ खुदाव ख़ल्क़ वेशक आगहे ॥
(४) हम अज़ी गुफ्तस्त दर वहरे सफा,
नेस्त अन्दर जुब्बः अम ग़ैरे खुदा ।
(५) ऐन आवे आव मे जूई अजव ।
नक़दे .खुदरा निस्यॉ मी गोई अजव ॥
(६) पादशाहीं अरचे मेमानी गदा ।
गनजहा दारी चराई वेनवा ॥

इनका अनुवाद इस प्रकार है:—

(१) आत्माका स्थान मेरे लिये अति आश्चर्यजनक था ।
मैं लज्जित हूँ कि मै उसकी प्रशंसा करने में हीन हूँ ।
(२) तू ही प्रगट आशिक नियमके अनुसार है और
तू ही वास्तवमें स्वयं माशूक़ भी है ।
(३) यदि तू अपने भेदको पाले तो ईश्वर और जगतके
भेदसे अवश्य विज्ञ हो जावे ।
(४) इसी वजहसे वहर सफ़ामें कहा है कि मेरे जुब्बह
(चोगे) में सिवाय ईश्वरके अन्य नहीं है ।
(५) तू तो स्वयं आव (पानी) है और पानीको ढूँढ़ता है ।
अपनी सम्पत्तिको भूल गया है और कहता है
आश्चर्य है ।
(६) तू बादशाह हैं, भिखारी किस लिये बनता है । सर्व
कोषागार तेरी सम्पदा हैं । फिर तू निर्धन क्यों है ?

यह सब पैगम्बरके उस संक्षेप वक्तव्यके विवरण हैं जो निम्न प्रकार है:—

"जो अपने आपको जानता है वह परमेश्वरको जानता है *।"

इसी प्रकार निम्नलिखित शैरोंका संकेत भी निज आत्माके परमात्मस्वरूपकी ओर है:—

(१) दर हक़ीक़त खुद तुई उम्मुलकिताब ।
खुद ज़ खुद आयात खुदरा बाज़याब ॥

(२) लौहे महफ़ूज़स्त दर मानी दिलत ।
हरचे मी ख्वाही शवद ज़ो हासिलत ॥

(३) सूरते नक़्शे इलाही .खुद तुई ।
आरिफ़े अशिया कमाही .खुद तुई ॥

(४) उनचे मतलूबे जहां शुद दर जहां ।
हम तुई औ बाज़ जू अज़ खुद निशा ।

इनका अर्थ इस प्रकार है:—

(१) वास्तवमें तू ही शास्त्रका विषय× है। अपने चिन्होंको खुद स्वयं अपने हीमें ढूंढ़ निकाल ।

(२) यथार्थरूपमें तेरा दिल ही सफलताकी कुंजी है। तेरी हर इच्छाकी पूर्ति उससे हो सक्ती है ।

(३) ईश्वरीय चित्र (मूर्ति) तू ही है। पूर्ण रीतिसे पदार्थोंका जाननेवाला स्वयं तू ही है ।

(४) दुनियामें जो कोई पदार्थ इष्ट हो सक्ता है, वह स्वयं तू ही है, अपने चिन्होंको पहिचान ।

मैंने कहा:—गुरुजी ! इस प्रश्नको आपने इतना स्पष्ट कर दिया कि जिससे मेरी सब शंकायें एकदम नष्ट हो गईं, परन्तु मैं

---

* Sayings of Muhummad.

× The first Surat of the Quran.

यह जानना चाहता हूं कि मुसलमानों और ईसाइयोंके मतमें वैराग्य और चारित्रका क्या स्वरूप बताया गया है ?

गुरुजीने उत्तर दिया:—इसाइयों और मुसलमानों दोनोंके मतोंमें चारित्रकी शुद्धि और तपश्चरण ही मोक्ष मार्ग बताये हैं, परन्तु इनका वर्णन गौण रूपमें है। थोड़ेसे प्रमाण तुझे पहिले ईसाइयोंकी इन्जीलसे देंगे। तीव्र बुद्धिवाला उनको स्वयं सहज में ही समझ लेगा। इसके पश्चात .कुरानशरीफ़ और मुसलमान दरवेशो (साधुओं) के वाक्य तुझे सुनायेगे, जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि मुसलमानी मतकी शिक्षा भी इस बारेमें वैसी ही है जैसी आर्य लोगोंके धर्मकी। तू अब इन्जीलके प्रमाणोंको सुन।

१—"....यदि तुम शरीरके अनुसार जीवन व्यतीत करोगे तो अवश्य मरोगे और यदि आत्मासे शरीरके कार्योंका विध्वंस करोगे तो जीवित रहोगे।"

२—" जो कोई शरीरके लिये बोता है वह शरीरसे दुःखोंकी फसल काटेगा और जो कोई आत्माके लिए बोता है वह आत्मासे अनन्त जीवनका लाभ करेगा।"

३—"अस्तु, अपने उन अवयवोंको मुर्दा करो जो पृथ्वी पर हैं।"

४—" और शारीरिक प्रवृत्ति मृत्यु है, परंच आत्मिक प्रवृत्ति जीवन और विश्राम है।"

५—" संकेत फाटकसे प्रविष्ट हो, कारण कि वह द्वार चौड़ा है एवं वह मार्ग विशाल है जो दुखको पहुँचाता है और

१—रोमियों अ० ८ आ० १३, २—ग्लातियों ६।८, ३—कंलोसियों अ० ३ आ० ५, ४—रोमियों अ० ८ आ० ६, ५—मत्ती अ० आ० ७ १३-१४.

उससे प्रवेश करनेवाले बहुत हैं। कारण कि वह फाटक संकेत है और वह मार्ग सकड़ा है जो जीवनको पहुंचाता है और उसको पानेवाले थोड़े हैं। "

६—" खेद तुम पर जो अन्न भरपूर हो क्योंकि भूखे होगे। खेद है तुम पर जो अब हंसते हो क्योंकि मातम करोगे और रोओगे। धन्य तुम भूके हो क्योंकि सुखी होओगे। धन्य हो तुम जो अब रोते हो क्योंकि हंसोगे। "

७—" यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे तो अपनी खुदीसे इन्कार करे (इच्छाको मारे) और अपनी क्रास (सलीब) उठाये और मेरे पीछे हो ले। "

८—" और जो कोई अपनी सलीब नहीं उठाता है और मेरे पीछे चलता है वह मेरे योग्य नहीं। "

९—" यदि कोई मेरे पास आये और अपने पिता, माता, स्त्री, संतान, भाइयों और बहिनों बल्कि अपनी जानसे भी दुश्मनी (वैर) न करे तो मेरा शिष्य नहीं हो सक्ता। "

१०—" जो कोई अपनी जान बचाने की कोशिश करेगा वह उसे खोयेगा, और जो उसे खोयेगा वह उसे जीवित रक्खेगा। "

११—" लोमड़ियोंके भट्ट होते हैं और पवनके नभचरोंके घोंसले, परन्तु मनुष्यके पुत्रके लिये सिर धरने को भी जगह नहीं है। "

१२—" परिश्रम और पीड़ामें, बारहा जागृत अवस्थामे, भूख

६—लूका अ० ६ आ० २५ व २१, ७—मत्ती अ० १६ आ० २४, ८—मत्ती अ० १० आ० ३८, ९—लूका अ० १४ आ० २६, १०—लूका अ० १७ आ० ३३, ११—मत्ती अध्याय ८ आयत २०, १२—करन्थियों अ० ११ आ० २७.

और प्यासकी तृष्णामें, बारहा उपवासोंमें, शीत और नग्नपनकी अवस्थामें।"

१३—"........और कुछ नपुंसक ऐसे हैं जिन्होंने ईश्वरीय साम्राज्यके लिये अपने आपको नपुंसक बनाया है।"

१४—"बल्कि मैं अपने शरीरको ताड़ना करके वशमें लाता हूं।"

१५—"और जो मसीह ईसूके हैं उन्होंने शरीरको उसकी वासनाओं और इच्छाओं समेत सलीबपर खींच दिया है।"

१६—"अस्तु, ऐ भाइयो! मैं खुदाकी रहमतें याद दिलाकर तुमसे विन्ती करता हूँ कि तुम अपने शरीरोंको जीवित और विशुद्ध और ईश्वरको प्रसन्न करनेवाले वलिदानके तौर पर भेंट कर दो। यही तुम्हारी उपयुक्त सेवा है।"

इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि इञ्जीलकी शिक्षानुसार शरीर संयोगके कारणोंका विध्वंस करना आत्मोन्नतिका बीज है। मानसिक इच्छाओंको मारना, शारीरिक प्रवृत्तिसे मुंह मोड़ना, कठिन तपस्याके तंग मार्ग पर चलना, भूक प्यासको वशमें करना, अपने शरीरको सलीब (अचेतन क्रास) की भांति मान कर सर्व कार्य करना, माता, पिता, स्त्री, संतान और भ्राताओं आदिसे अनुराग न करना और स्वयं अपने जीवनसे भी रागको तोड़ देना, संन्यासीके अनुसार गृहस्थी और घरको त्याग कर व्यवहार करते रहना, संन्यासकी परीषहों (कठिनाइयों) को सहर्ष सहन करना, ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना और हर प्रकारसे शरीर और उसके अवयवों (वाञ्छाओं और इच्छाओं) को तपकी अग्निमें आहुति देकर वलिदान कर देना ही मोक्षके कारण हैं।

१३—मत्ती अध्याय १९ आ० १२, १४—१-करन्थियों अ० ९ आ० २७, १५—गलीतयों अ० ५ आ० २४, १६—रोमियों अ० १२ आ० १.

अब मुसलमानोंके मतके बारेमें सुन। उनके यहां भी उपवास अर्थात रोज़ा, तीर्थयात्रा (हज्ज), बलिदान अर्थात् इन्द्रियनिरोध इत्यादि ही मोक्षके कारण बतलाये गये हैं। मुसलमान सूफ़ी दरवेशोंने कहा है कि:—

(१) ज़ दुनिया तर्कगीर अज़ बहरेदीं तू,
तवक्कुल वर .ख़ुदा कुन बिलयक़ीं तू।

(२) क़लम अन्दर बसूरत ख़ेश दरज़न,
हिसारे नफ्सरा अज़ बेख़बरकन।

(३) हवासे ख़म्सः राचूं दुज़्द बरबन्द,
चूँ वस्तन दुज़्द ऐमन बाश मेख़न्द।

(४) चुँ बायद रफ्तनत ज़ींदारे दुनिया,
चरा बन्दी तो दिल दरकारे दुनिया।

(५) बग़फ़लत हाय दुनिया ख़ल्क़ मग़रूर,
बकरदा याद मर्ग अज़ दिल हमादूर।

(६) अलायक़हाय दुनिया क़तअ़ गरदाँ,
हज़ीं दिल बाश दरवे चूँ ग़रीबाँ।

(७) ज़हे ग़फ़लत कि मारा कोर करदस्त,
कि यादे मर्ग अज़ दिल दूर करदस्त।

(८) ता न गरदद नफस तावेअ़ रूह रा,
कै दवा यावी दिले मजरूह रा।

(९) मुक़ामे फ़िक्र: बस अली मुक़ामस्त,
मनी वो मादराँ जा बस हरामस्त।

(१०) दरआं मन्ज़िल बुअ़द कश्फ़ो करामात,
वले बायद गुज़श्तन ज़ां मुक़ामात।

(११) अगर दुनिया व अक़बा पेश आयद,
नज़र करदन दर आँ हरगिज़ न शायद ।

(१२) अगर गरदी तो दर तौहीद फ़ानी,
वहक़ यावी वक़ाये जिन्दगानी ।

इनका अर्थ इस प्रकार है:—

(१) तू दीनके वास्ते दुनियाको छोड़ दे; तू ईश्वर पर श्रद्धा पूर्वक भरोसा कर ।

(२) खुदीकी सूरतमें तू क़लम मार दे; तू इच्छाकी गद्दीको जड़से उखाड़ कर फेंक दे ।

(३) इन्द्रियोंको तू चोरकी भांति क़ैद कर ले; जब चोर पकड़ लिया तो शांतिसे हर्ष मना ।

(४) जब तुझे यहांसे जाना है तो फिर अपने मनको सांसारिक कार्योंमें क्यों लगाता है ?

(५) संसारके कामोंमें जनसाधारण संलग्न हैं । सबोंने मृत्युका ध्यान चित्तसे विसार दिया है ।

(६) संसारके सम्बन्धोंको छोड़ दे । तू उसमें यात्रियोंकी भांति उदासीन चित्तसे रह ।

(७) क्या निद्रा है कि हमको अंधा कर दिया है, कि मृत्यु का विचार हृदयसे निकाल दिया है ।

(८) जब तक इन्द्रियां आत्माके आधीन नहीं हो जातीं पीड़ित हृदयका इलाज कैसे सम्भव है ?

(९) संन्यास का स्थान निस्संदेह उच्च स्थान है । 'मै' और 'मेरा' का गुज़ारा उसमें नहीं है ।

(१०) उस अवस्थामें अद्भुत कृत्य होते हैं, परंतु वहांसे गुज़र जाना चाहिये ।

(११) यदि दोनों संसार साधुको पेश किये जावें तो भी उन पर दृष्टि न डालना चाहिये।

(१२) यदि तू तवहीद (अद्वैतरूप) में विनाशको प्राप्त हो जावे तो सत्यतामें अमर जीवन पावे।

.कुरान शरीफ़की निम्न आयतोंमे * उन्नति करने के मार्गोंमें ज्ञान पर ज़ोर दिया गया है:—

(१) "सहनशीलताको अमलमें ला और उच्च शिक्षा दे और नीचसे दूर हट जा।"

(२) "........कि वह अपने आपको धर्ममें उसको समझ कर शिक्षा दे सकें।"

(३) "कितने आदमी इन बातों पर अपने मनमें विचार करते हैं ?"

(४) "यह एक मनुष्यके लिये उपयुक्त नहीं है कि .खुदा उसको एक ईश्वरीय किताब दे, बुद्धि दे और भविष्य वक्तव्यकी योग्यता दे, और वह मनुष्योंसे कहे कि तुम .खुदाके अतिरिक्त मेरी पूजा करो। परन्तु उसको यह कहना चाहिये कि तुमको ज्ञान और चारित्रमें पूर्ण होना चाहिये, क्योंकि तुम शास्त्रोंके जाननेवाले हो और तुमको उन पर चलना चाहिये।"

इनके अतिरिक्त और भी दरवेशोका कलाम है जो कहता है:—

(१) मुर्गे जान अज़ हब्से तन याबद रिहा।
गर बतेगे ला कुशी ईं अज़दहा॥

---

* उल्लेख सेल (Sale) साहबके अंग्रेजी अनुवादके पृष्ठोंका है।
(1) पृ० १२५, (2) पृ० १४९, (3) पृ० ३५३ (4) पृ० ४१.

(२) सफ़ाते नफ़स शहवतहा बुरीदन ।
सफ़ाते दिल हमा ताअ़त वकरदन ॥

इनका अर्थ भी यही है कि:—

(१) प्राणपक्षी देहके पिंजरेसे तब ही छुटकारा पा सक्ता है जब कि वैराग्यके खङ्गसे इस विशाल सर्पको काट डाला जाय ।

(२) प्रलोभनाओं और कामनाको जो इन्द्रियोंके लक्षण हैं काटना और शुद्ध भावोंसे परमात्माकी इताअ़त करना।

इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं है कि प्रारम्भ कालमें मुसलमानोंके मतका भी पूर्णरूपसे वही भाव था जो सत्य वैज्ञानिक धर्मका है। अब तेरी समझमें यह बात निश्चय हो गई होगी कि इन धर्मोंमें जिनका स्वरूप तुझे समझाया गया है इनके वास्तविक भावोंकी अपेक्षा तनिक भी भेदभाव नहीं है। जो कुछ भेदभाव इनमें पाया जाता है वह इनके शास्त्रोंके अलंकारयुक्त भाषाके कारण है, या इस कारणसे है कि इन शास्त्रोंके पश्चातके पाठकोंने इनके वास्तविक भावको न समझकर और इनके अर्थको शब्दार्थ भावमें लगाकर अपनी २ बुद्धिके अनुसार टीकाटिप्पणी रच डालीं। जब कोई मनुष्य संसारमें जन्म लेता है तो जिस जाति या धर्ममें उत्पन्न होता है उसीके कथानकोंको उसके माता पिता इत्यादि उसके हृदय पर अंकित कर देते हैं, या यों कहो कि वह उसको एक सेट (set) धार्मिक चित्रोंका दे देते हैं, जिसको वह ऐतिहासिक रूपमें बांचने पर आरूढ़ हो जाता है। इस प्रकार जितने अलंकारिक भाषायुक्त धर्म हैं उनके अनुयायियोंको एक एक सेट अलंकारिक चित्रोंका मिल जाता है। फिर जब वे बड़े हो जाते

है और अपने २ चित्रोंका (एक दूसरेसे) मुकाबिला करते हैं तो उनके भावार्थ न समझने के कारण एकको दूसरेके चित्रोंमें विरोध और बेधर्मीके अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता है। यही कारण पारिस्परिक वैर-भावका है। यदि मनुष्य अपने और दूसरेके चित्रोंका भाव समझ पाये तो इस धार्मिक विरुद्धता और उससे उत्पन्न होनेवाले बैर-भावोंका सर्वथा नाश हो जाये। अब समय आ गया है कि विविध धर्मोंका यथार्थ रूप फिरसे प्रगट हो, इसलिये तेरे हृदयमें भी इनके जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। यह बड़ी शुभ इच्छा है और स्व और परका कल्याण करनेवाली है।

मैंने कहा—गुरुजी! आपके बचनों ने सूर्य उदयका काम किया। जिस प्रकार सूर्य देवताके उदय होने से अंधकार एकदम सर्वथा नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आपके वचनोंके प्रतापसे मेरे हृदयका अंधकार सर्व नष्ट हो गया। वास्तवमें अब वह समय आ गया है कि धर्मोंके पारस्परिक विरोध नष्ट हो जायें। भविष्यके हालको तौ आप ही जान सक्ते हैं परन्तु जब आपकी इतनी कृपादृष्टि आज हुई है तो विदित होता है कि अवश्य ही मनुष्य जातिकी शुभ गति शीघ्र आनेवाली है। अब कृपा करके गौबधकी कुरीतिके प्रारम्भ और उसके वास्तविक भावपर भी प्रकाश डालिये ताकि इस पापमयी क्रिया द्वारा जो अन्याय व विरोध संसारमे बढ़ रहे है, वह बंद हो जावें।

गुरुजीने उत्तर दिया:—गायके बलिदानकी कुप्रथा बहुत दिन हुये पशुवधके सिलसिलेमें इसी भारतदेशमें प्रारम्भ हुई थी। इसका पूरा पूरा वर्णन अब हिन्दूधर्मके शास्त्रोंमे नहीं मिलता है। परन्तु महाभारतके शान्तिपर्वके ३३९ वे अध्यायमे इतना स्पष्ट लिखा है कि एक दफ़ा कुछ देवोंने उत्तम ऋषि ब्राह्मणोंसे कहा कि यज्ञमें बकरोंका

बलिदान चढ़ाना चाहिए और यह भी कहा कि शब्द 'अज' का अर्थ बकरा लगाना चाहिये। ऋषियोंने इसका उत्तर इस भांति दिया कि "वैदिक श्रुति यही घोषणा करती है कि यज्ञ केवल बीजों (अनाज) द्वारा ही किया जाता है, इन्हींको 'अज' कहते हैं। बकरोंका वध करना तुमको उचित नहीं है। ऐ देवताओ! वह धर्म भले और सदाचारी पुरुषोंका नहीं हो सक्ता जिसमें पशुवध बताया जावे। अब यह कृतयुगका काल है। इस सदाचारके कालमें पशुओंका बलिदान कैसे हो सक्ता है?" जब यह विवाद ऋषि और देवताओंमें हो रहा था उस समय राजा वसु वहा पर अकस्मात् आ निकले और उनको दोनों पक्षोंने अर्थात् देवताओं और ऋषियोंने इस बातके निर्णयके लिये अपनी ओरसे पंञ्च मुक़र्रर कर दिया। राजा वसुने अन्याययुक्त होकर देवताओंका पक्षपात किया और शब्द "अज" का अर्थ बकरा ही बतलाया। इसपर ऋषियोंको क्रोध आया और उन्होंने वसुको श्राप दिया जिससे वह नष्ट हो गया। इसी शान्ती पर्वके ३३७ वें अध्यायमें लिखा है कि वसुने एक समय अश्वमेध यज्ञ किया और उसमें किसी प्राणीका वध नहीं किया था वरन् यज्ञकी समस्त सामग्री जंगली उपज ही थी। अतः यह स्पष्ट है कि प्रारम्भमें यज्ञ विना पशुवधके होते थे। पश्चातको पशु वधकी कुप्रथा चल पड़ी। जैनमतके पुराणोंमें भी इस कुप्रथाके चलने का वर्णन आया है जिसका भाव इस प्रकार है:—

एक समय राजा वसुके राजमें, जिसको बहुत काल व्यतित हुआ एक व्यक्ति नारद और उसके गुरु भाई परवतमें 'अज' शब्दके अर्थ पर जिसका प्रयोग देव-पूजामें होता था, विवाद हुआ। इस शब्दके वर्तमान समयमें दो अर्थ हैं, एक तो तीन वर्षके पुराने धान जिनमें

अँखुआ (अंकुर) नहीं निकल सक्ता है और दूसरा 'बकरा'। पर्वतने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस शब्दका अर्थ बकरा ही है, मगर नारदने पुराने अर्थकी पुष्टि की। सर्व जनताकी सम्मति, सनातन रीति और प्रतिवादीकी युक्तियोंसे पर्वतकी पराजय हुई, मगर उसने राजाके समक्ष इस घटनाको उपस्थित किया, जो स्वयम् उसके पिताका शिष्य था। राजाकी सम्मति परबतके अनुकूल प्राप्त करने के हेतु परबतकी माँ छिप कर महलोंमें गई और उससे अपने पतिकी गुरुदक्षिणा मांगी और इस बातकी इच्छुक हुई कि मुँह-मांगा वर पावे। वसुने, जिसको इस बातका क्या अनुमान हो सक्ता था कि उससे क्या मांगा जायगा, अपना बचन दे दिया। तब परबतकी मांने उसको बतलाया कि वह परबतके अनुकूल निर्णय करे और उसको प्रतिज्ञासे न हटने दिया। दूसरे दिन मामला राजाके समक्ष उपस्थित हुआ जिसने अपनी सम्मति परबतके अनुकूल दी। इसपर वसु मार डाला गया और परवत राजधानीसे दुर्गतिके साथ निकाल दिया गया। परन्तु उसने अपनी शक्तिभर अपनी शिक्षाके फैलाने का प्रण कर लिया। परबत अभी सोच रहा था कि उसको क्या करना चाहिये कि इतने में एक पिशाच पातालसे ब्राह्मण ऋषिका भेष बना कर उसके पास आया। यह पिशाच, जिसने अपना शांडिल्यके तौर पर परबतको परिचय दिया, अपने पूर्व जन्ममें मधुपिंगल नामी राजकुमार था जो अपने बैरी (रक़ीब) द्वारा धोखा खाकर अपनी भावी स्त्रीसे वञ्चित रक्खा गया था। इसका विवरण यों है कि मधुपिंगलको राजकुमारी सुल्साके स्वयम्बरमें वरमाला द्वारा स्वीकार किये जाने का पूरा मौक़ा था। और सब लोगोंका यही विश्वास था कि उसके होते हुए सुल्सा अन्य किसी व्यक्तिको नहीं

वरेगी। परंतु उसका एक रक़ीब सगर नामक था जिसने सुल्साके प्रेममें अन्धा होकर अपने मंत्रीसे इस बातकी इच्छा प्रगट की कि वह कोई यत्न राजकुमारीकी प्राप्तिका करे। इस दुष्ट मंत्रीने एक बनावटी सामुद्रिक शास्त्र रचा और उसको गुप्त रीतिसे स्वयम्वर मण्डपके नीचे गाड़ दिया; और जब स्वयम्वरमें आये हुये राजकुमारोंने अपने अपने आसन ग्रहण कर लिये तो उसने छलपूर्वक ज्योतिषद्वारा एक प्राचीन शास्त्रका स्वयम्वरके मण्डपके नीचे गड़ा होना बतलाया। क़िस्सा मुख़्तसर जाली दस्तावेज़ खोद कर निकाला गया और सभाने मंत्रीजीसे ही उसके बांचने का अनुरोध किया। उसने शास्त्र पढना आरंभ किया और शीघ्र ही आंखोंके वर्णन पर आया जिसके कारण मधुपिंगल विशेषतया प्रसिद्ध था। बड़े हर्षसहित मधुपिंगलके उस शत्रुने बनावटी सामुद्रिक शास्त्रके एक एक शब्दको जिसमें मधुपिंगलके ऐसी आखोंकी बुराई की गई थी, ज़ोर दे देकर पढ़ा, कि वह दुर्भाग्यकी सूचक होती हैं और उनका स्वामी कर्महीन, अभागा, मित्र और कुटुम्बियोंके लिये अशुभ होता है। बेचारे मधुपिंगलके आंसू निकल आये और वह सभामेंसे उठ गया। इस कपट क्रियाके द्वारा परास्त, दुःखित और लज्जित होकर उसने अपने कपड़े फाड़ डाले और संसारको त्याग संन्यासीका जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। इस समय सुल्साने स्वयम्वरमे प्रवेश किया और सगरको अपना पति स्वीकार किया। इसके कुछ काल पश्चात् मधुपिंगलने एक सामुद्रिकके जानकारसे सुना कि उसके साथ छल किया गया और धोखा हुआ। उसने उसी क्रोधकी दशामें जो धोखेके हालके खुल जाने से उत्पन्न हुआ था, अपने प्राण तज दिये। मर कर वह पातालमें पिशाच योनिमें उत्पन्न हुआ जहां उसको अपने पूर्वजन्मके

धोखा खाने का तत्काल बोध हो गया और वह वहांसे अपने शत्रुओं से बदला लेने को चला। वह तुरन्त मनुष्योंके देशमें आया और परबतसे उस समय उसका समागम हुआ जब कि वह बसुके राज्यसे निकाला गया था और सोच विचारमें था कि वह 'अज' शब्दके अपने (नवीन) अर्थको किस प्रकार संसारमें फैलावे। उसने परबत को अपने शत्रुसे बदला लेने में योग्य और प्रस्तुत सहायक जानकर उसके दुष्ट कार्यकी पूर्तिमें सहायता देने की प्रतिज्ञा की। मनुष्य और पिशाचकी इस अशुभ प्रतिज्ञाके अनुसार यह निश्चय हुआ कि परबत सगरके नगरको जाय जहां पर महाकाल (यह उस पिशाचका वास्तविक नाम था) सब प्रकारके वबा (रोग) और मरी फैलायेगा जो परब्रतके उपायोंसे दूर हो जायेंगीं। इस प्रकार परबतकी प्रतिष्ठा वहांके लोगोंकी दृष्टिमें हो जायगी जिनमें वह अपने भावोंका प्रचार करना चाहता था। पिशाचने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और परबतने समस्त प्राणियोंको बुरे बुरे रोगोंमें ग्रसित पाया जिनका वह मंत्रोंद्वारा सफलतापूर्वक इलाज करने लगा। परन्तु उस अभागे राज्यमें हर रोग के स्थान पर जो अच्छा हो जाता था, दो नये और रोग उत्पन्न हो जाते थे। यहां तक कि लोगोंको इस बातका विश्वास हो गया कि उनपर देवताओंका कोप है और उन्होंने पर्वतसे, जिसको वह अपना मुख्य रक्षक समझने लगे थे, इस बारे मे सम्मति ली। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हो गया और अन्तमें यह विचारा गया कि अब वलिदानकी नवीन प्रथाके आरम्भके लिये समय अनुकूल है। आरम्भ कालमें प्राणियोंके वलिदानका घोर विरोध हुआ, परन्तु बहुत काल तक झेले हुये असह्य दुःखों और परबतकी अतुल प्रतिष्ठाने, जो पूजाके दर्जे तक पहुंच गई थी, और मुख्यतः उस श्रद्धाने जो उसकी

अद्भुत शक्तिके कारण लोगोमें उत्पन्न हो गई थी और जो वास्तवमें उसकी कार्य सफलताके अनुभवपर निर्धारित थी, मन्द साहसवाले हृदयोंको उसकी आज्ञा पालने के लिये प्रस्तुत कर दिया। सबसे पहिले मास बाज़ बाज़ रोगोंमे दवाईके तौर पर दिया गया और वह कभी आशाजनक परिणामके उत्पन्न करने में निष्फल नहीं हुआ। धीरे धीरे पर्वतके भक्तोंकी संख्या बराबर बढ़ती गई यहा तक कि उसके विश्वास दिलाने पर कि बलिसे पशुको कष्ट नहीं होता है वरन् वह सीधा स्वर्गको पहुंच जाता है, "अज" मेध (यज्ञ) किया गया। यहां भी महाकालकी शक्तियोपर भरोसा किया गया था जो कार्यहीन नहीं हुई। क्योंकि ज्योंही बलि पशुने 'पवित्र' छुरीके नीचे तड़फना व कराहना आरम्भ किया, त्योंहीं महाकालने अपनी माया शक्तिसे हवाई विमानमें एक बकरेको हर्षित व प्रसन्न स्वर्गकी ओर जाते हुये बनाकर दिखा दिया। सगरके राज्यके बुद्धिभ्रष्ट लोगोंको विश्वास दिलाने के लिये अब किसी चीज़की आवश्यक्ता नहीं रह गई। अजमेधके पश्चात् गोमेध हुआ, गोमेधके बाद अश्वमेध और अन्ततः पुरुषमेध भी बड़े समारोहके साथ मनाया गया, जिनमेंसे हरएकने अपना आशाजनक फल दिखलाया। हर यज्ञमें बली-पशु या मनुष्यको स्वर्ग जाते हुये भी दिखलाया गया। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया लोगोंके हृदयोंसे मासभक्षण व जीवहिंसाकी घृणा जो उनमें प्रारम्भिक अवस्थामें थी निकलती गई, यहाँ तक कि अन्तमें बलिदान बलि-प्राणीके लिये स्वर्गका निकटस्थ मार्ग माना जाने लगा। इस प्रथाकी एक व्याख्या बलिदानके शास्त्रोंमें, जो उस समयमें रचे गये थे, कर दी गई और लोगोंके दिलोंमें इन रीतियोंके लिये इतनी श्रद्धा हो गई कि बहुतसे आदमी हर्षपूर्वक यह विश्वास करके कि वे इस प्रकार

तुरन्त स्वर्ग पहुंच जायेंगे, स्वयं अपनी बलि चढ़ाने के लिये तत्पर हो गये। अंतमें सुल्सा और उसका कपटी-चाहनेवाला सगर-भी देवताओं के प्रसन्नार्थ अपना अपना बलिदान कराने आये और यज्ञकी वेदी पर काट डाले गये।

पिशाचका प्रण अब पूर्ण हो गया; उसने अपना बदला ले लिया और पाताल लोकको चला गया। उसके चले जाने से बलिदानका बनावटी प्रभाव बहुत कुछ जाता रहा। परन्तु चूंकि वह अपने साथ वबाओं और महामारियोंको भी लेता गया, इस कारण वश उसकी ओर आरम्भमें लोगोंका ध्यान नहीं गया। नवीन रचे गये वाक्यके, "कि बलि-प्राणी सीधा स्वर्गको पहुंच जाता है," अप्रमाणिक होने को अब लोग इस प्रकार समझाने लगे कि यह पवित्र मन्त्रोंके उच्चारण या शुद्ध अनुवाचनमें जो बलिदानके समय पढ़े जाते थे, किसी त्रुटिके रह जाने के कारणसे अथवा किसी प्रकारके और कारणसे है। इसी बीचमें यज्ञ करानेवाले होताओंके निमित्त यज्ञकी पूरी विधि भी तैय्यार कर ली गई थी और आचारित पद्धतिका एक सम्पूर्ण नीतिशास्त्र भी तैय्यार हो गया जिसमें छोटे २ नियमों पर भी अच्छी तरहसे विचार किया गया था। अनुमानतः प्राचीन (ऋग्वेदके) समयके कुछ मंत्रोंमें भी पर्वत और उसके मातहत शिष्योंके अनुसार परिवर्तन कर दिया गया था। सगरकी राजधानीसे बढ़कर यह नई शिक्षा दूर तक फैल गई और पिशाचके अपने निवास स्थानका प्रस्थान करने के पश्चात् भी होताओंकी शक्तियां, जो उनको मेस्मरेज़म, योग विद्या इत्यादिके अभ्याससे जिनमें मालूम होता है कि उनको भली प्रकार प्रवेश कराया गया था, प्राप्त हुई थी, लोगोंको पर्वतके दुष्ट मतकी ओर आकर्षण करने में पर्याप्त रहीं।

ऐसा वर्णन है जो जैन और हिन्दू मतोंके पुराणोंसे पशुवधके आरम्भका समझमें आता है। इसमें संदेह नहीं है कि एक समयमें यह बहुत दूर देशों तक फैल गया था और म्लेच्छ देशके वासियोंने भी इसको स्वीकार कर लिया था। इसी कारणसे पश्चातको यह कभी पूर्णतया बन्द नहीं हो सका; यद्यपि अधिक बुद्धिवाले मनुष्य शीघ्र इस बातको जान गये थे कि बलिदानका प्रभाव वास्तविक नहीं वरन असत्य है, और उन्होंने इस बातको निश्चित कर लिया कि रक्तका बहाना अपनी या बलि प्राणीकी मुक्तिका कारण कभी नहीं हो सक्ता। परन्तु इस प्रथाकी जड़ें दूर दूर तक फैल गई थीं और एकदम नष्ट नहीं हो सक्ती थीं। यह बहुत समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् हुआ कि बलिदानकी प्रथाके विरोधमें जो लहर उठी थी उसमें इतनी शक्ति पैदा हो गई कि सुधारका काम कर सके। इस निमित्तसे चिन्हाश्रित यानी भावार्थका आधार यज्ञ शास्त्रोंके अर्थके बदलने के हेतु ढूंढा गया; और मुख्य जातिके बलि पशुओंके लक्षणों और उनके नामोंके गुप्तार्थ कायम करने के लिये प्रयोग किया गया। इस प्रकार मेढ़ा, बकरा, सांढ, जो बलि पशुओंमे तीन मुख्य जातिके जीव हैं, आत्माकी कुछ घातक शक्तियोंके, जिनका नाश करना आत्मिक शुद्धताकी वृद्धि व मोक्षके हेतु आवश्यकीय है, चिन्ह ठहराये गये। यह युक्ति सफल हुई, क्योंकि एक ओर तो उसने यज्ञकी विधिको ईश्वरीय वाक्य की भांति अखण्डित छोड़ा और दूसरी ओर बलिदानकी अमानुषिक प्रथाको बन्द कर दिया, और मनुष्योंके विचारोंको इस विषयमें सत्यमार्गकी ओर लगा दिया। परन्तु पापके बीजमें, जो बोया गया था इतनी अधिक फूट कर फैलने की शक्ति थी कि वह बलिदान सिद्धान्तके भावार्थके बदल जाने से पूर्णरूपसे

नष्ट न हो सकी। क्योंकि तमाम गुप्त शिक्षावाले अर्थात् अलंकार-युक्त मतोंने, बलिके खून द्वारा स्वर्गमे जा पहुंचने की नवीन प्रथाको स्वीकार कर लिया था और वह सहजमें ही एक ऐसी रीतिके छोड़ने के लिये जिसमें उनके प्रिय भोजन अर्थात् पशुओंका मांस खाने की करीब करीब साफ़ तौरसे आज्ञा थी, प्रस्तुत नहीं किये जा सके।

यहूदियोंके मतमें भी ऐसा ही परिवर्तन एक समयमें हुआ जैसा हिन्दूधर्ममें हुआ। १—सैमवल अध्याय १५ आयात २२ में लिखा है:—

"क्या खुदावन्दको सोख़्तनी कुरबानियों और ज़बीहोंमें उतनी ही खुशी होती है जितनी कि खुदावन्दकी आवाज़की सुनवाईमे ? देख! आज्ञा पालन करना बलिदान करने से अच्छा है और सुनवा होना मेंढ़ोंकी चर्बीसे।"

यह एक प्रचलित रीतिका प्रबल खण्डन है। शास्त्रके भावार्थको बदलनेका प्रयत्न इस वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है:—

'मैं तेरे घरसे कोई बैल नहीं लूंगा और न तेरे वाड़ेमें से बकरा........अगर मै भूखा होता तो तुझसे न कहता........ क्या मैं बैलोंका मांस खाऊँगा और बकरोंका खून पिऊँगा ? ईश्वरको धन्यवाद दे और अपने प्रणोंको परमात्माके समक्ष पूरा कर।"*

जरेमियां नबीकी किताब इस विचारकी और पुष्टि करती है और इस प्रकार ईश्वरीय वाक्य बतलाती है:—

........मैंने तुम्हारे पुरखाओंको नहीं कहा, न उनको आज्ञा दी....... भूनी हुई बलि और ज़बीहोंके लिये, परन्तु इस बातकी मैंने उनको आज्ञा दी कि मेरी बातको सुनो........

---

* ज़बूर ५० आयात ९–१५.

"और तुम उन सब रीतियोंपर चलो जो कि मैंने तुमको बतलाई हैं ताकि तुम्हारे लिये लाभदायक हो ।"*

इस प्रकार इस कुरीतिका प्रारम्भ हुआ । यह महान दुखकारी और कष्टदायक है और मनुष्यको बजाय मोक्ष या पुण्यके लाभके नर्कगामी बनाती है ।

मैंने कहाः—पूज्य गुरूजी ! आपकी कृपासे इस बुरी प्रथाके प्रारम्भको मैं भली प्रकार समझ गया । आपके बचनों द्वारा स्वयं मेरे हृदयमें इस बातकी विवेचना हो गई कि क्यों हिन्दुओंमें मांसाहारी और माससे घृणा करनेवाले पुरुषोंमें भेद नहीं समझा गया । अब यह बात भी स्पष्टतया मेरी समझमें आगई कि क्यों शब्दार्थमें कतिपय वेदवाक्य पशु और पुरुष बलिदानका प्रचार करते हैं और क्यों गोवध अब सत्य हिन्दू हार्दिक वृत्तिको अरुचिकर और घृणास्पद है ।

गुरूजीने कहाः—तेरा कहना सत्य है वास्तवमेंः—

(१) शब्दार्थमे वेद पशु व पुरुष बलिदानका प्रचार करते हैं ।

(२) हिन्दू लोग अब गऊ और मनुष्यके बलिदानके सख्त विरोधी है यद्यपि ये दोनों शास्त्रोंमें गोमेध और पुरुषमेधके नामोंसे प्रसिद्ध हैं ।

(३) अश्वमेध करीब २ अब बिल्कुल बन्द हो गया है, केवल अजमेधके बजाय कुछ मनुष्य नासमझीसे देवताओंके प्रसन्नार्थ बकरेका मांस भेंट चढ़ाते हैं ।

(४) अब विशेष करके बुद्धिमान लोग यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रोंका

---

* जरे मिया नवीकी किताब अध्याय ७ आयात २१ से २३ तक ।

भाव शब्दार्थके बजाय भावार्थमें हो, लगाते हैं।
इनमेंसे पहिले अश्वमेधका भाव सुन जो बृहत्
आरण्यक उपनिषद्के प्रारम्भमें दिया हुआ है:—

"ओ३म्! प्रातःकाल वास्तवमें यज्ञके अश्वका सिर है, सूर्य्य उसका नेत्र है, वायु उसकी श्वांस है, उसका मुख सर्वव्यापी अग्नि है, कर्ण बलिदानके घोड़ेका शरीर है, स्वर्गलोक उसकी पीठ, आकाश उसका उदर और पृथ्वी उसके पांव रखने की चौकी है। ध्रुव (Poles) उसके कटिभाग हैं; पृथ्वीका मध्य भाग उसकी पसुलियां है, ऋतुयें उसके अवयव हैं, महीना और पक्ष उसके जोड़ हैं; दिन और रात उसके पांव है, तारे उसकी हड्डियां है, और मेघ उसका मांस हैं, रेगिस्तान उसके भोज्य है जिनको वह खाता है; नदिया उसकी अंतड़ियां है; पहाड़ उसके जिगर और फेफड़े है; वृक्ष और पौधे उसके केश है; सूर्य्य उदय उसके अगाड़ीके भाग हैं और सूर्य्यास्त उसके पीछेके भाग हैं। जब वह जमुहाई लेता है तो बिजली (पैदा) होती; जब वह हिनहिनाता है तो गर्जना होती है; जब मूतता है तो पानी बरसता है; उसका स्वर वाणी है, दिन वास्तवमे उसके सामने रखे हुए यज्ञके बरतनकी भांति है; उसका पलना पूर्वी समुद्रमें है, रात वास्तवमें उसके पीछे रक्खा हुआ वर्तन है; उसका पलना पश्चिमी समुद्रमें है। यह दोनों यज्ञके बर्तन घोड़ेके गिर्द (इधर उधर) रहते हैं; घुड़दौड़के अश्वके तौर पर वह देवताओंका वाहन है; युद्धके घोड़ेकी भांति वह गंधर्वोंकी सवारी है; तुरंगके सदृश वह असुरोंके लिये है; और साधारण घोड़ेके समान मनुष्योंके लिये है। समुद्र उसका साथी है। समुद्र उसका पलना है।"

यहां संसार बलिदानके घोड़ेके स्थानमें पाया जाता है, इसका

यही भाव है कि योगीको संसारका त्याग कर देना चाहिये। संसार इन्द्रियोंके समूह मनका विषयभोग है और उसका सर्वथा त्याग कर देना मोक्षमार्गमें उन्नति करने के लिये अति आवश्यक हैं। मन घोड़ेकी भांति चंचल है और उसी प्रकार शरीरको इधर उधर खींचे लिये फिरता है जिस प्रकार घोड़ा रथको खींचता हैं। इसीलिये अश्वमेधका अर्थ समस्त संसारके भोगों और पदार्थोंके त्यागका है। इसी तरह और प्रकारके यज्ञोंका अर्थ भी जानना। शतपथ ब्राह्मण-में स्पष्ट बतलाया गया है कि स्वयं मनुष्य ही बलिका पशु हैं। महाभारतके अश्वमेध पर्वमें इस कुल गुप्त रहस्यकी व्याख्या पूर्णरूपसे कर दी गई है। वहा यह बता दिया गया है कि दस इन्द्रियां यज्ञ करने वाले है उनके विषय समिध् है, इनका स्वाहा करना बलिदान हैं, चित्तका करसा (स्रवा) है। और इसी पर्वमें यह भी कह दिया गया है:—

> " अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्।
> एतत्पदमनुद्विग्नं वरिष्ठं धर्मलक्षणम् ॥
> हिंसापराश्च ये केचिद्ये च नास्तिकवृत्तयः।
> लोभमोहसमायुक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ "

अर्थः—उत्तम धर्मका वास्तविक चिन्ह अहिंसा है। ज्ञान पापसे बचने का सर्वोत्तम व सर्वश्रेष्ट उपाय है। अहिंसा, नास्तिकपन, लोभ इत्यादि नर्कको पहुंचाते हैं।

छान्दोग्य उपनिषदमें भी कहा है कि मोक्षके मुमुक्षुको तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्यवादिताको इन्द्रियनिग्रहके द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। और योग दर्शनमें तो अहिंसाको प्रारम्भ ही में पाच नियमोंमें गिना दिया है कि जिसके बिना समाधि

असम्भव है।

बलिदानका मूल तत्त्व यह है कि उसके बिना परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। कारण कि जब तक नीच शारीरिक बाह्य आत्मा मनुष्यके ध्यानमें विराजमान है उस समय तक परमात्मापनकी प्राप्ति असम्भव है। इसलिये परमात्मापनको प्रकाशमें लाने के लिये अधमात्मतत्त्वके बलिदानकी आवश्यक्ता है। अज अलंकारकी भाषामें इसी अधमात्मतत्त्वकी मैथुनशक्तिको प्रकट करता है। नरमेध स्वयं अधमात्माका बलिदान है इसको तू निश्चय करके समझ ले। देख वेदान्तरामायणमें भी लिखा है कि:—

त एव ब्राह्मणाः सर्वे गावश्च सत्क्रियाः स्मृताः। *
ताश्चैवं भक्षितास्सर्वा राक्षसैरतिहिंसनैः।
नित्याभ्यासो वेदयज्ञस्तेनातीव विनाशितः॥

'ये सब सुन्दर धर्म ब्राह्मण है। इन धर्मोंकी क्रिया सोई गऊ है। इन ब्राह्मण गौओंको भी जीव मारने में बड़े चतुर जो राक्षस सो खाय लेते भये। भगवानका ध्यान नित्य करना सोई वेदका यज्ञ है, उस यज्ञको भी राक्षसोने नाश किया।'

मैंने कहा:—महाराज! आपकी कृपासे बलिदानका भाव और उसके यथार्थ स्वरूपको मैं भली भांति समझ गया हूं। मेरे हृदयमें यह बात निश्चय हो गई है कि यद्यपि धर्म अपने अनुयायियोंको शान्ति सुख, अमरत्व प्रदान करता है, तथापि यह वरदान कुछ मूल्य देकर ही प्राप्त किये जा सक्ते है। वह मूल्य पैसा, धन दौलत नहीं है, न झूठी स्तुति और न दिखाऊ भक्ति है। वह केवल उन कारणोंका विध्वंस करना है जो स्वात्माके निज परमात्मस्वरूपको प्रगट होने नहीं

---

* वेदान्तरामायण प्रकाशित लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेसद्वारा, पृष्ट ४७।

देते। अतः मुक्तिका मार्ग अपने ही अधम भावोंका वलिदान है, दूसरे किसी प्राणीका जीवन वलिदान नहीं। यह बात मेरे मनमें पूर्णतया निश्चय हो गई और यह भी साफ हो गया कि हिन्दू मतमें वलिदानकी कुप्रथा एक कुसमयमें गत कालमें चल पढ़ी जिसके निषेध-का पश्चात्में वहुत प्रयत्न किया गया। परन्तु अब मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानोके शास्त्रोंमें भी वलिदान अधमात्माहीका वताया गया है? उनके धर्मोंके यथार्थ स्वरूपसे तो यही प्रगट होता है कि यह तीनों धर्म भी किसी दशामें अपने यथार्थ भावमें पशुवधके पक्षकार नहीं हो सक्ते। परन्तु आपके मुखारविन्दसे इसकी व्याख्या मैं निश्चयात्मक रूपसे सुनना चाहता हूं।

गुरुजीने कहाः—यहूदियोंके मतके कुछ वाक्य अब तुमको वतायेंगे जिनसे यह पूर्णतया सिद्ध हो जायगा कि वास्तवमें यहूदियोंके मतमें वलिदानका भाव शब्दार्थमें नहीं वरन् गुप्त भावमें लगाना चाहिये।

(१) "क्या मैं बैलोंका मांस खाऊंगा व वकराका रुधिर पिऊंगा; परमात्माको धन्यवाद दे और सर्वोत्कृष्टके समक्ष अपने व्रतोंका पालन कर।"

(२) "हे प्रभु! मेरे होठोको खोल दे तो मुख तेरी स्तुति करेगा कि तू वलिदानसे खुशी नहीं होता, नहीं तो मैं देता। भूनी हुई वालिमें तुझे आनन्द नहीं है।"

(३) "प्रभु कहता है तुम्हारे वलिदानकी अतिसे मुझे कौन काम? मैं मेढ़ोंकी भूनी हुई वलिदानसे और मोटे

---

(१) ज़बूर ५० आयत १३, (२) ज़बूर ५१ अ० १५-१६,
(३) यशैयाह १।११-१५.

बछड़ोंकी चरबीसे भरपूर हूं और बैलों और भेडों और बकरोंका रक्त नहीं चाहता हूं !........झूठे चढ़ावे मत लावो। लोबानसे मुझे नफरत है, नूतन चन्द्र और सनत और ईदी जमाअतसे भी। मैं ईद और अधर्म दोनोंको सहन नहीं कर सकता हूं। मेरा मन तुम्हारे नूतन चन्द्रमाओं और ईदोंसे क्लेशमय है। वे मुझको भार (के सदृश कष्टकर) हैं। मैं उनको सहन करने से थक गया हूं। और जब तुम अपने हाथ फैलाओगे तो मै तुमसे अपने नेत्र छुपा लूंगा। हां! जब तुम प्रार्थना करोगे तो मैं नहीं सुनूंगा। तुम्हारे हाथ रक्तसे भरे हुये है।"

) "वह जो बैलको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक मनुष्यको मार डाला। और वह जो एक मेमनेको बलिदान करता है ऐसा है जैसे उसने एक कुत्तेकी गरदन काट डाली हो। जो बलि चढ़ाता है ऐसा है जैसे उसने सुअरका रक्त चढ़ाया हो। हां! उन्होंने अपने अपने मार्ग चुन लिये हैं और उनके हृदय उनके दोषमय दुष्कृत्योंमें संलग्न हैं।"

"मैंने दयाकी इच्छा (आज्ञा) की थी न कि बलिदानकी। और परमात्माके ज्ञानका इच्छुक हुआ था, भूनी हुई बलिदानके स्थान पर।"

(६) "किस अर्थके हेतु शेबासे लोबान और एक दूरस्थ देशसे सुगंधित ईख मेरे लिये आते हैं। तुम्हारी भूनी

---

(४) यशैयाह ६६।३. (५) होसिया ६।६. (६) जेरमयाह ६।२०.

हुई वलिदान मुझे पसंद नहीं हैं और तुम्हारे यज्ञ मेरे निकट आनन्दमय नहीं हैं।"

(७) "वे मेरे चढ़ावेके लिये मांस वलिदान करते हैं और उसे भक्षण करते हैं। प्रभु उसको स्वीकार नहीं करता, अब वह उनकी बुराई स्मरण करेगा और उनके अपराधोंका उनको दंड देगा। वे मिश्र (बंधन) को पुनः जायंगे।"

(८) "मै तुम्हारी ईदोसे घृणा करता हूं और उनसे द्वेष करता हूं, और मै तुम्हारे धार्मिक संघोंकी गन्ध नहीं सूँघूंगा।

"और यदि तुम हर प्रकार भूनी हुई वलि एवं मांस को मेरे लिये अर्पण करोगे तो मैं उनको स्वीकार न करूंगा। और तुम्हारे मोटे वैलोंके धन्यवाद-अर्चनाओंकी ओर भी आकर्षित नहीं होऊंगा।"

(९) "अपने वलिदानमें भूनी हुई वलियोंको घुसेड़ दो और मांस खाओ।

"कारण कि जिस दिवस मैं तुम्हारे वाप दादाओंको मिश्रकी पृथ्वीसे निकाल लाया मैंनें उन्हें भूनी हुई वलि चढ़ाने की शिक्षा नहीं दी और न वलिदानके लिये कोई आज्ञा दी।

"वल्कि मैने केवल इतना ही कहकर उनको आज्ञा दी कि मेरे शब्दोंके श्रवण करनेवाले हो और मैं तुम्हारा परमात्मा हूंगा और तुम मेरे भक्त होगे। और तुम उन सव नियमों पर चलो जो मैं तुमको वताऊं जिससे तुम्हारा भला होवे।

---

(७) होसिया ८।१३, (८) एमोस ५।२१-२२, (९) जेरेमयाह ७। २१-१३.

"बलिदान और चढ़ावेको तूने नहीं चाहा। तूने मेरे कान खोले, भूनी हुई बलि और पापोंकी बलिका तू इच्छुक नहीं है।"

"मैं गीत गाकर परमात्माके नामकी स्तुति करूँगा और धन्यवाद देकर उसकी प्रशंसा करूंगा। उससे प्रभु बैल और बछड़ेकी अपेक्षा, जिनके सींग और खुर होते हैं, विशेष आनंदित होगा।"

"परमात्माका (यथार्थ) बलिदान मानकी मार्जना है। हे परमात्मा! तू पवित्र और दीन हृदयको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखेगा?"

"मैं क्या लेकर प्रभुके समक्षमें आऊँ और परमोत्कृष्ट ईश्वरके आगे क्योंकर दण्डवत् करूँ? क्या भूनी हुई बलियों और एक वर्षके बछड़ोंको लेकर उसके आगे आऊँ? क्या प्रभु सहस्रों मेढ़ोंसे व तेलकी दस सहस्र नदियोंसे प्रसन्न होगा? क्या मैं अपने पहलौटीके पुत्रको अपने पापोंके बदलेमें दूँ—अपने शरीरके फलको अपनी आत्माके अपराधोंके हेतु मैं दे दूँ? हे मनुष्य! उसने तुझे वह दिखलाया है जो कुछ भी भला है। और प्रभु तुझसे और क्या चाहता है इसके अतिरिक्त कि तू न्याय करे और दयार्द्रचित्त हो प्रेम रक्खे। और अपने परमात्माके साथ नम्रतासे चले।"

) ज़बूर ४०।६, (११) ज़बूर ६९।३०-३१, (१२) ज़बूर ५१।७१, ईकाह ६।६-८.

यह स्वयं इञ्जीलके प्राचीन अहदनामेकी आयतें हैं। और इनके पढ़ने के पश्चात् मनमें इस विषयमें संशय नहीं रहता है कि बलिदान-सम्बन्धी आज्ञाओंका शब्दार्थ लगानेसे बड़ा भारी धोका उत्पन्न हुआ है। इञ्जीलके नूतन भागमें इस धोकेको दूर किया गया है। "मैं दयाका इच्छुक हूँ न कि बलिदानका" यह नवीन इञ्जीलका प्रेम सूत्र है। और इञ्जीलके नवीन भागकी रूमियोंकी चिट्ठीमें पौलस रसूलने अधमात्माके बलिदानको स्पष्ट रीतिसे निश्चय कर दिया है। उसने लिखा है:—

"इसलिये हे भाइयो! मैं तुमसे परमात्माकी दयाओंके नाम पर प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने ही शरीरोंका सच्चा, पवित्र और क़बूल होने योग्य बलिदान कर दो। यह तुम्हारी सच्ची सेवा है।"

पर्सियोंके मतम भी यही शिक्षा मिलती है। उनके मतकी पुस्तक शायस्तला शायस्तमें लिखा है कि:—

"नियम यह है कि मांस द्वारा जब कि उसमेंसे दुर्गन्धि सड़ाँयँध न भी निकल रही हो, प्रार्थना याचना नहीं करनी चाहिये।"

अब तूने जो मुसलमानोंके धर्मके बारेमें प्रश्न पूँछा तो उसका हाल भी सुन! इसमें सन्देह नहीं कि मोहम्मद बलिदानके वास्तविक स्वरूपसे पूर्णतया विज्ञ था, परन्तु वह अपने सजातीय मनुष्योंके क्रोधको प्रज्वलित नहीं करना चाहता था इसलिये उसने बलिदानके सिद्धान्तके यथार्थ भावको गुप्त रीत्या बता कर ही संतोष धारण किया और इस प्रकार खुले तौरसे उसका निषेध नहीं किया जैसा इञ्जीलके नूतन अहदनामेमें किया गया था। कुरान शरीफ़के २२ वें अध्यायमें लिखा है कि:—

" ऊँटोंकी बलिदान हमने तुम्हारे लिये परमात्माकी आज्ञाओंकी मान्यताका चिन्ह बताया है ।.......उनका मांस ईश्वरको स्वीकृत नहीं है और न उनका रक्त । सुतरां तुम्हारी धर्मनिष्ठता उसको स्वीकृत है । "

भाषाके लिये इससे अधिक स्पष्ट और ज़ोरदार होना असंभव है, परन्तु खेद है कि अरबवासियोंके हृदयपर इसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा और जैसे इञ्जीलके प्राचीन अहदनामेके पैगम्बरोंका कलाम यहूदियोंके हृदयमें घर न कर सका वैसे ही हजरत मोहम्मदका कलाम अरबवालोंके हृदयोंको न बदल सका । मनुष्य अपनी नीच प्रवृत्तिमें भी अनोखा ही है । वह विचारता है कि पवित्रसे पवित्र व्यक्ति (परमात्मा) भी होमित पशुओंका मांस खाने और उनका रक्तपान करने को लालायित होगा ।

अब तुझे कुरान शरीफ़में वर्णित गऊके बलिदानका अर्थ बताते हैं । ध्यानसे सुन ! इसको एक पहेलीकी भांति मोहम्मद साहबने अपने अनुयायियोंको बताया था और इस बातका प्रयत्न किया था कि पहेलिका अपने मर्मकी ओर स्वयं संकेत करे । अब तुझे वही रिवायत बताई जाती है जो मोहम्मद साहबने बताई थी:—

" और जब मूसाने अपने लोगोंसे कहा कि अल्लाह आज्ञा देता है कि तुम एक गऊकी बलि चढ़ाओ तो उन्होंने कहा कि क्या तुम हमसे ठठोली करते हो ?

" मूसाने कहा कि खुदाकी पनाह ! कि मैं मूर्ख बनजाऊँ ।

" उन्होंने कहा, हमारे लिये अपने परमात्मासे पूछ कि वह हमारे लिये वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है ?

" मुसाने कहा कि वह कहता है कि वह एक गऊ है जो न

बूढ़ी है न बछिया है; उन दोनोंमें बीचकी अवस्थाकी है। अस्तु, वह तुम करो जिसकी तुमको आज्ञा दी जाती है।

"उन्होंने कहा कि तू अपने प्रभुसे हमारे लिये प्रश्न कर कि वह कहे कि उसका वर्ण कैसा है?

"मूसाने कहा वह कहता है कि उसका वर्ण लाल है—अति लाल है। दर्शकोंके चित्तको उसका वर्ण प्रसन्न करता है।

"वे बोले कि, दरयाफ्त करो हमारे लिए अपने प्रभुसे कि वह हमारे लिये वर्णन करे कि वह क्या (वस्तु) है? कारण कि गऊये हमारे निकट सब एक समान है और हम यदि खुदाने चाहा तो अवश्य पथप्रदर्शन पावेंगे।

"मूसाने उत्तर दिया कि वह कहता है कि वह एक गऊ है जो न पृथ्वी जोतने के लिये निकाली गई है, न खेत सींचने के लिये। वह नीरोग (पूर्ण) है। उसमें कोई दोष नहीं है।

"उन्होंने कहा अब तुम ठीक पता लाये। तब उन्होंने उसको बलि चढाया यद्यपि वह ऐसा न करनेके निकट थे।

'और जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा) की हत्या की।

"और उसकी बाबत आपसमें वाद विवाद किया। अल्लाहने उसको प्रकट किया जिसको तुमने छिपाया था। कारण कि, हमने कहा कि मृत शरीरको बलि दी हुई गाय के भागसे छुआओ।

"ऐसे ईश्वरने मृतकको जीवित किया।

"और अपना चिन्ह दिखाता है।

"शायद कि तुम समझो।"

लाल बछियाके बलिदान (.कुरबानी) की यह कथा है। और

यह वास्तवमें एक अद्भुत वर्णन है, जो उच्च सीमाका प्रवीण रहस्यमय व निपुण है। इसमे मूसा और यहूदी लोगोंका वार्तालाप दिखलाया है। मूसा यहूदियोंका पेशवा और पथप्रदर्शक था। अल्लाहकी ओरसे मूसाने यहूदियोसे कहा कि उसकी आज्ञा है कि तुम गऊ बलि चढ़ाओ। अब देख ! यहूदियोंका उत्तर कितना विचित्र है। वह मूसा और अल्लाह दोनोंसे विज्ञ है और स्थूल रूपमें उनके शास्त्रोंमें भी पशु वलिदानका वर्णन है और यही विश्वास आज कल भी यहूदी, मुसलमान्, ईसाई तीनोंका है कि वह लोग वास्तवमे शास्त्रीय आज्ञाके अनुसार पशु वलिदान करते थे, इसपर भी जब मूसाने उनको कहा कि अल्लाहकी आज्ञा है कि गायकी बलि करो तो उन्होने मूसासे कहा:—

"क्या तुम हमसे ठठोली करते हो।"

इसका भाव यही है कि ऐ मूसा ! तू जो गायकी वलिका सँदेशा लाया है तो अल्लाह जिसके लिये तूं बलि मांगता है वह तो प्राणियोंका रक्षक दयालु परमात्मा है। वह पशुवध कैसे चाहेगा ? क्या आज तू ठठोली करने वैठा है ? फिर मूसाने कहा—खुदाकी पनाह कि मैं मूर्ख बनजाऊँ। इसका भाव यह है कि मै हँसी नहीं करता हूं और न मुझे मूर्ख समझो वल्कि बुद्धिमत्ता द्वारा मेरे कथनका भाव ग्रहण करो। तिस पर भी यहूदियोंने उसके कथनको शब्दार्थमे ग्रहण नहीं किया वरन् उससे यही कहा कि:—

"हमारे लिये अपने परमात्मासे पूंछ कि वह बताये कि वह क्या वस्तु है जिसके वलिकी आज्ञा हुई है"। अब मूसा और यहूदियोंके उत्तर प्रति उत्तर द्वारा पहेलीका भाव खुलता है। वह गऊ कैसी है यह मूसा बताता है कि—वह बूढ़ी नहीं है न वह बछिया है बल्कि

बीचकी अवस्था की है।

अब यहूदियोंने फिर पूंछा कि उसका रंग कैसा है? मूसाने बतलाया कि उसका वर्ण अति लाल (शब्दार्थमें पीला) है, दर्शकोंके चित्तको उसका वर्ण प्रसन्न करता है।

फिर अब भी यहूदी पूछते हैं। कि वह क्या वस्तु है? कारण कि गऊयें सब एक समान हैं अर्थात् साधारण गऊसे तो तुम्हारा मतलब है नहीं तो फिर वह कौन असाधारण गऊ है जिसकी बलि बताते हो। अब मूसा फिर और विवेचना करता है। उस विवेचना द्वारा साधारण गऊ जातिका सम्पूर्ण निषेध कर देता है। जिस गऊकी आवश्यक्ता है वह गऊ है जो न पृथ्वी जोतने के लिये निकाली गई है, न खेत सींचने के लिये। (देहधारी प्राणीके जितने रोग होते हैं उन सबसे) वह निरोग है। उसमें कोई दोष नहीं है।

अब इतनी वार्तालाप होने पर वक्ता व श्रोताओंका पारस्परिक भ्रम मिटा। तब यहूदियोने कहा कि अब तुम ठीक पता लाये अर्थात् अब पहेलीका अर्थ खुला। अब उन्होंने मूसाकी बुद्धिकी सराहना की।

तब बलिदान किया गया। यहा भी वक्ताने इस बातको उचित समझा कि बलिदानके अर्थको सीमित करे ताकि साधारण भावमें उसको मूर्ख मनुष्य न समझ बैठें। इसलिये उसने यह अति आवश्यक शब्द यहा पर लगा दिये कि " यद्यपि वह ऐसा न करने के निकट थे।" कुलका कुल जुमला इस भांति है:—

" तब उन्होंने उसको बलि चढ़ाया, यद्यपि वह ऐसा न करने के निकट थे।"

यह बड़ी विचित्र बात है कि बलि चढ़ाया भी, और यद्यपि वह ऐसा न करने के निकट थे। यह दोनों बातें कैसी? इसका समाधान

इस प्रकार है कि किसी दूसरेके प्राण घातमें तो इस प्रकारकी उलझन उत्पन्न नहीं होती है। परन्तु जब अपने ही अधमात्माका बलिदान किसीको करना होता है तो अलवत्त: दिक़त पड़ती है। एक भी वस्तुके लिये किसी मनुष्यसे कहा जाय कि इस पदार्थका त्याग कर दो तो देखो कितनी कठिनाई उसे प्रतीत होती है। और धर्मके मार्गपर समस्त इच्छाओं वांच्छाओंके पुञ्जको नष्ट करना पड़ता है। इसलिये यहां रिवायतमें यह शब्द पाये जाते हैं कि "यद्यपि वह ऐसा न करने के निकट थे।"

यह तो एक भाग गायकुशीके भाष्यका हुआ। दूसरा भाग इससे भी विचित्र है। उसको फिर सुनो। देखो! कहनेवाला क्या कहता है?

"और जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा) की हत्याकी और उसकी बाबत आपसमें वाद-विवाद किया, अल्लाहने उसको प्रगट किया जिसको तुमने छिपाया था। कारण कि हमने कहा कि मृत्युको बलि दी हुई गायके भागसे छुवाओ। ऐसे ईश्वरने मृतकको जीवित किया और अपना चिन्ह दिखाता है शायद कि तुम समझो।"

यहां अब तक मूसा और मूसाके समयके यहूदियोंका ज़िक्र हो रहा था। अब इकदम बात बदल गई और एक नई रवायत जिसमें "**तुमने क़त्ल किया। तुमने वाद विवाद किया**" इत्यादि बातें मिलती है। मोहम्मद साहबके अनुयायियोंने न तो उस समय कोई क़त्ल किया था और न कोई खून छिपाया था और न किसी मृतक शरीरको उनके सामने किसी बलि दी हुई गायके भागसे जिलाया गया। और फिर बलि दी हुई गाय कौनसी? कथनसे तो वही मूसाके समयके बलिदान की गाय प्रतीत होती है? भला शब्दार्थमें इस

विषयकी कैसे विवेचना हो सकेगी ? और फिर अन्तका मज़मून कैसा विचित्र है:—

" और अपना चिन्ह दिखाता है शायद कि तुम समझो । "

भावार्थ इस कुल मज़मूनका स्पष्ट है । चिन्हवादकी गुप्त रहस्यमयी लेखनशैलीका एक उम्दा नमूना यहां श्रोतागणोंके सामने उपस्थित है । अन्तमें स्पष्ट कह भी दिया गया है कि यह ईश्वरीय चिन्ह हैं शायद तुम्हारी समझमें आ जावें । अब स्पष्ट शब्दोंमें इनका अर्थ सुनो ! अलंकारकी भाषामे मनुष्य (शब्दार्थमें आत्मा) के मारने से भाव स्वात्मज्ञानकी अनभिज्ञता से है, जिसके कारण आत्मा परमात्मापनमें मुर्दा अर्थात् जीवित नहीं रहता है । मुर्देका अर्थ पहिले ही तुझे बताया जा चुका है । भाव यह है कि जो लोग अज्ञानतावश आत्माके अस्तित्वसे इन्कार कर देते हैं उन्होंने मानो आत्मघात किया । कारण कि विना स्वात्मअनुभवके परमात्मापनकी प्राप्ति नहीं है । और स्वात्म-अनुभव विना स्वात्मज्ञानके नहीं हो सक्ता । इसी कारण मिथ्यादृष्टी पुद्गलवादियोंको यहा आत्महत्याका दोषी ठहराया हैं । 'तुम' शब्दका अर्थ मिथ्यादृष्टि पुद्गलवादियोंका समझना । वाद-विवादका भी यही भाव हैं । संक्षेपतः इस मजमूनका कि " जब तुमने एक मनुष्य (आत्मा) की हत्याकी और उसकी बावत वाद-विवाद किया " इत्यादिका अर्थ यही है कि जब पुद्गलवादी आत्माके अस्तित्वसे इन्कार कर देते हैं तो वाद-विवादमें उनको कायल करना अति कठिन होता है । उस समय यदि आत्मसिद्धिका कोई उपाय धर्मके पास न हो तो धर्मकी पराजय और अनात्मवादकी विजय हो जाय । जो महा अनर्थ हो । परन्तु धर्म तो सत्य

विज्ञान है उसकी पराजय कैसे संभव है? इसलिये वह एक परीक्षा बताता है और प्रतिपक्षियोंसे कहता है कि ऐ अनात्मवादियो! तुम वाद-विवादको छोड़कर इस एक ही परीक्षा द्वारा स्वयं देख लो कि आत्मा है या नहीं। वह परीक्षा यह है कि इस अपनी नीच इच्छाओंके पुञ्जरूपी अधमात्माका सर्वथा बलिदान कर दो तो तत्क्षण वह आत्मा जिसको तुम जीवित नहीं मानते हो स्वयं भड़क कर जीवित होने द्वारा तुमको अपने अस्तित्वका पूर्ण परिचय देगा। बस! केवल एक यही 'युक्ति' मनुष्योंको आत्मा और उसके असली स्वरूपका बोध करा देने के लिये यथेष्ठ है:—"**शायद कि तुम समझो।**"

गायके बलिदानका अर्थ अब तुमको स्पष्ट मालूम हो गया। संस्कृतमें भी गोशब्दका अर्थ इन्द्रियसमूह है। क्योंकि शब्दार्थमें गो वह है जो चले, और इन्द्रियां चलायमान होती ही हैं। इन्हीं चलायमान होने वाली इन्द्रियोंको नष्ट करने का भाव 'गोमेध' का था। इन्हीं इन्द्रिय-समूहको मुसलमान देशोंकी भाषामें नफ़्स और इनके मारने अर्थात् इन्द्रियदमनको नफ़्सकुशी कहते है। इस नफ़्सको सूफ़ी कविने कविरचनामें अज़दहा बांधा है, जिसका मारना मुक्ति प्राप्ति हेतु आवश्यक बताया गया है:—

(१) ता न गरदद नफ़्स ताबे रूहरा,
कै़दवा यावी दिले मजरूहरा।

(२) मुर्गेजाँ अज़हब्से तन यावद रिहा,
गरवतेग़े लाकुशी ईं अज़दहा।

अर्थ:—(१) जब तक कि नफ़्स अर्थात् इन्द्रियां आत्माके वशमें नहीं होतीं उस समय तक हृदयका आताप

संताप दूर नहीं हो सक्ता ।

(२) शरीरके सम्बन्धसे आत्मा मुक्त हो जाय यदि इस अज़दहे (नफ्स) को वैरागकी खड्गसे मार डाला जाय ।

क्या ये बातें तेरी समझमें भली प्रकार आ गईं ?

मैंने कहाः—गायके बलिदानका जो विचित्र भाव आपने मुझे सुनाया और समझाया उससे मेरा हृदय अत्यंत संतुष्ट हुआ । परन्तु यह मेरी समझमें नहीं आता कि इस भेदको जानते हुये भी मोहम्मदने बलिदानके नाम पर पशुवध किया । आप परम दयालु हैं, मेरे इस भ्रमको भी दूर कर दीजिये ।

गुरुजीने कहाः—यह प्रश्न भी तेरा अति उचित और प्रसंगवत् है । इसका उत्तर धार्मिक इतिहासके जानकारोंके समझमें शीघ्र ही आ जायगा । अलंकारकी भाषाके प्रयोगका यही फल हुआ करता है कि उसके यथार्थ भावके जाननेवाले थोड़े होते हैं; परन्तु उसको शब्दार्थके भावमें समझनेवाले बहुत अधिककी संख्यामें हुआ करते हैं । समयके प्रभावसे यथार्थ भावसे अनभिज्ञ लोग स्वयं भारतवर्ष और अन्य देशोंमें भी लौकिक प्रतिष्ठा व राज्यको प्राप्त हो गये और उनका ज़ोर बँध गया । बढ़ते २ उनकी अज्ञानता और अहंकार इतने प्रबल हो गये कि वह अपने भावोंके अतिरिक्त किसी और विचारोंको सहन न कर सके । इसीलिये मर्मज्ञ लोगोंने अपने गुप्त संगठन व संस्थायें बना लीं । गत समयमें यूनान, मिश्र, मेसोपोटेमियां आदि देशोंमें गुप्त संस्थायें बराबर स्थापित रहीं । ऐसी ही एक गुप्त संस्था फ्री मिशनरी भी है जो अब भी प्रचलित हैं । इन गुप्त संस्थाओंमें परीक्षाके पश्चात् गिने चुने

मनुष्योंका प्रवेश कराया जाता था और उनको आत्मिक ज्ञान सिखाया जाता था। सर्वसाधारण मनुष्य इस गुप्त आत्मिक विद्याके रहस्यसे अनभिज्ञ थे और इस कारण उन्होंने यथार्थ तत्त्वज्ञोंको बहुत दफ़ा कष्ट दिया और उनके प्राणघात भी किये। इञ्जीलमे स्पष्ट रीतिसे शिक्षा दी गई है कि मोतियोंको सूअरोंके समक्ष मत फेको कि कहीं वह उनको पांवसे कुचल डालें और उलटकर तुमको मार डाले। यह लगभग दोहजार वर्षकी व्याख्या है। मुसलमानोंके समयमें भी कठोरसे कठोर अत्याचार अज्ञानतावश अनभिज्ञ पुरुषोंके हाथोंसे मुसलमान तत्त्वज्ञों तथा अन्य धर्मावलंबियो पर हुये। मंसूर इसी बात पर शूली पर चढ़ा दिया गया कि उसने आत्माके परमात्मा होने की घोषणा जनतामें की थी। स्वयं मोहम्मदकी जीवनी भी यही बतलाती है कि उनको भी अपनी जानका डर था। यदि यह सत्य है कि मोहम्मद सत्य आत्मिक ज्ञानसे बहुत कुछ अंशमें जानकारी रखता था तो भी उसने उस ज्ञानको स्वयं रहस्यवादके मतानुसार ही प्राप्त किया था और रहस्यवादकी गुप्त भाषा हीमें उसने अपने मतका प्रचार किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ गिने चुने आदमियोंने तो, जो सूफ़ी कहलाते थे और हज़रत मोहम्मदके पास मसज़िदके इर्द-गिर्दकी कोठरियोंमे रहा करते थे, अपने पैगम्बरकी शिक्षाका गुप्त रहस्य समझ पाया। परन्तु वह सहस्रों लाखो स्त्री व पुरुष जो मर्मज्ञानसे अनभिज्ञ थे और जिनको गुप्त रहस्य मोहम्मदी शिक्षाका नहीं बताया गया था, उन्होंने तो दीन इस्लामको केवल उसके ज़ाहिरी भेषमें ही ग्रहण किया था। यह अनभिज्ञ लोग बड़े जोशीले और बहादुर थे। उन्होंने दीन इस्लामको यही समझ कर ग्रहण किया था कि एक बाहरी खुदाकी भक्तिद्वारा मनवांछित फलकी प्राप्ति होती

है। उनका विश्वास था कि स्वर्गके सुख, हूरोंकी सोहवत इत्यादि उनको केवल उस बाहरी ईश्वरसे बलि पशुओंकी भेंटद्वारा प्राप्त हो सकेंगे। उनको न किसीने निजआत्माके स्वरूपको बताया था और न उनको स्वयं कुछ परिचय निज आत्माके स्वरूपका था और न वह उसको साधारणतया मानने पर प्रस्तुत ही होते। उनके समक्ष यह असंभव था कि कोई व्यक्ति प्रगटरूपमें निजात्माका गुणानुवाद गा सके। इनके प्रसन्न रहने ही में इस्लामके पैग़म्बर का लाभ था। इस्लाम और राज्य और जान भी इनके असंतुष्ट व अप्रसन्न हो जाने से ख़तरेमें पड़ जाते। इसलिये मोहम्मदको प्रत्येक अवसर पर ऐसी क्रिया करनी पड़ी जिससे उनके दिलोंमें किसी प्रकारका भेद उत्पन्न न हो। और इसीलिये उसको बलिदानके नामपर पशुवध भी उन लोगोंके समक्ष करने पड़े। यदि एसा न करते तो अवश्य रहस्यवादसे अनभिज्ञ मुसलमान उनसे बिगड़ खड़े होते और जो लौकिक उन्नति इस्लामने की वह कभी नहीं हो पाती। हे पुत्र! यह कारण था जिससे मोहम्मद स्वयं हत्या करने पर वाध्य हुआ।

मैंने कहाः—आपको धन्य है कि आपने मेरे इस संदेहको भी दूर कर दिया। अब मुझ पर दयाकी दृष्टि रखिये। मैंने सुना है कि एक अन्य कथा भी इस गायके बलिदानके बारेमे मुसलमानोंके मतमे प्रचलित है। मेरी लालसा है कि आपके मुखारविंदसे उसको अर्थसमेत श्रवण करके तृप्त होऊँ।

गुरुजीने कहाः—अच्छा! वह कथा भी जो मुसलमानोंके मतमें प्रचलित है हम तुझे सुनाते हैं, सुन! पहले कथा श्रवण कर उसके पश्चात् उसका अर्थ भी बतायेंगे।

"एक अमुक पुरुषने अपनी मृत्यु पर अपने पुत्रको जो उस

समय बच्चा था, और एक बछियाको, जो उसके बिलूग (सयानपन) प्राप्त करने तक सहरा (बियाबान) में फिरती रही, छोड़ा। जब वह बच्चा बालिग़ (स्याना) हुआ तो उसकी माताने उसको बताया कि वह बछिया उसकी है। और उसको शिक्षा दी कि वह उसको ले (पकड़) कर तीन स्वर्ण मुहरोंके बदले में बेच लेवे। जब वह युवक अपनी बछियाको लेकर बाज़ारमें गया तो उसको मनुष्यके रूपमें एक फ़रिश्ता मिला। और उसने उसकी बछियाके छै स्वर्ण मुहर दाम लगाये। परन्तु उस युवकने इस मूल्य पर बछियाको विदून अपनी माताकी आज्ञाके बेचने से इन्कार किया। फिर आज्ञा प्राप्त करने पर वह बाज़ारको वापिस गया और फ़रिश्तेसे मिला। परन्तु अब उस फ़रिश्तेने पहिले से द्विगुण मूल्य लगाया, इस प्रतिज्ञापर कि युवक अपनी मातासे उसका ज़िक्र न करे। किन्तु उस युवकने इससे इन्कार किया और अपनी माताको इस अधिक मूल्यका समाचार बताया। उस स्त्रीने यह विचार कर कि यह मनुष्य कोई देवता है अपने पुत्रको पुनः उसके निकट भेजा, और इस बातको दर्याफ्त किया कि उस बछियाका क्या करना चाहिये। इसपर उस फ़रिश्तेने उस युवकको बताया कि कुछ समय उपरांत उसको इसराईलके लोग मुँह मांगे दाम देकर मोल ले लेंगे। उसके बहुत थोड़े समयके पश्चात् ऐसा हुआ कि एक इसराईली हम्माईलको उसके एक निकट सम्बन्धीने मार डाला और उसने यथार्थ घटना को छिपाने के लिये लाशको, उस स्थानसे जहां घटना घटित हुई थी एक अति दूरस्थ स्थानपर डाल दिया। मृत व्यक्तिके मित्रोंने कुछ अन्य मनुष्योंपर मूसाके

समक्ष हत्याका अभियोग लगाया, परन्तु उनके इन्कार करने पर और उनको झुठलाने के निमित्त साक्षीके न होने पर ईश्वरने आज्ञा दी कि अमुक २ चिन्होंवाली एक गऊका वध किया जावे। किन्तु अनाथकी गऊके अतिरिक्त अन्य किसी गऊमें वे चिन्ह नहीं पाये गये। और लोगोको उसकी उतनी गिन्नियां देकर जितनी उसकी खालमें आ सकीं, मोल लेना पड़ा। कोई कहता है कि उसके बराबर तोल कर सोना देना पड़ा और कुछ ऐसा कहते हैं कि इससे भी दस गुणा मूल्य दिया गया। इस गऊकी उन्होंने बलि चढ़ाई और ईश्वरकी आज्ञानुसार इसके एक अवयवसे मृतक को छुवाया जब कि वह जीवित हो उठा, और उसने अपने हत्यारेका नाम बताया। इसके पश्चात् वह पुनः मृतक होकर गिर पड़ा।"

यह कथा गऊके बलिदानकी है इसका भाव बड़ा विचित्र और शांतिप्रद है। जो मनुष्य इसके वास्तविक स्वरूपको एक दफ़ा समझ लेगा और उसपर सच्चे हृदयसे विश्वास करेगा वह अवश्य दो तीन योनियोंमें मोक्ष पा जायगा। यह मनुष्यजातिका दुर्भाग्य है कि इसके द्वारा महान् पाप और हिंसा संसारमें हुये। परन्तु भवितव्यता बड़ी बलवान है और कर्मोंकी गति पर किसीका वश नहीं चलता है। अब तुझे हम इस विलक्षण कथाका अर्थ बताते हैं:—

अमुक पुरुषके मरने का भाव निज आत्माके बोध और उससे सम्बंधित परमात्मपदका नष्ट होना है। इस दशामें आत्मा संसारी जीव कहलाता है जो अपने कर्मोंके फलको भोगता हुआ एक योनिसे दूसरी योनिमें भ्रमण किया करता है। और इस संसारमें कोई शरण ऐसी नहीं है जो इसको कर्मोंके बन्धनसे बचा सके। इसी अबोध अशरण

अवस्थाको कथानकमें अनाथ अवस्था बांधा है। बछिया इन्द्रियसमूह है। युवा होने से अभिप्राय मनुष्य योनिकी प्राप्तिसे है। बालिग (युवा) होने के समय तक बछिया बियाबानमें चरती रही—इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जन्मकी प्राप्तिसे पूर्व नीचेकी योनियें अर्थात् एक इंद्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इंद्रिय चार इन्द्रिय और मन रहित व मन सहित पंच इन्द्रिय योनियोंमें आत्मा भ्रमण करता रहा। कारण कि मनुष्यको तो कुछ भोग उपभोगकी प्राप्ति होती हैं, परन्तु कीड़े मकोड़े आदिकी योनियोंमें भोगोपभोग कहां? वहां घास फूस मिट्टी तिनके कांटे और इसी प्रकारके अन्य पदार्थ ही भक्षण करने को मिलते हैं।

सयानपनमें माताने बताया कि बछियाको वेचकर तीन मोहरें प्राप्त करनी चाहियें। भावार्थ यह है कि मनुष्य संसारमें अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये धन सम्पत्ति चाहता है। और धन सम्पत्तिके विविध दशाओंकी अपेक्षा तीन माप हैं। पाहिली कामना मनुष्यकी यह होती है कि उसके पास इतना बसीला (धन) तो अवश्य हो कि उसका पेट पालन हो सके। यह एक पैमाना है। फिर इसके प्राप्त होने पर उसकी यह इच्छा होती है कि केवल पेट पालन ही नहीं बल्कि कुछ गृहस्थीके सुख भी हों। यह दूसरा पैमाना है। जब यह भी प्राप्त हो जाता है तो फिर इच्छा होती है कि अन्न भोग विलासकी सामिग्री एकत्र हों। यह तीसरा पैमाना है। इन तीनों पैमानोके अनुसार विविध लोगोंकी इच्छा धन प्राप्तिकी होती है। स्वर्ण मुहरका भाव उपयुक्त धन सम्पात्ति है। कारण कि स्वर्ण मुहर उस समयमें एक बहुत बड़ी चीज़ होती थी। माता बुद्धि है। मतलब यह है कि जब मनुष्यमें समझ आती है तो उसकी बुद्धि उसको

यह बताती है कि लौकिक इष्ट पुरुषार्थकी सिद्धिके निमित्त तीन प्रकारके धन सम्पत्तिकी आवश्यक्ता होती है अर्थात् एक केवल पेट पालनेमात्रकी, दूसरी गृहस्थ सुखमें प्रवेश करने की, तीसरे भोग विलासकी सामग्रीकी। और यह भी उसको समझ बतलाती है कि इन तीनों ही प्रकारकी सम्पत्तियोंकी प्राप्ति केवल एक ही तरह से सम्भव है अर्थात् इन्द्रियोंके मारनेसे। यह स्पष्ट है कि चाहे कोई मज़दूरी करे, चाहे कोई किसी प्रकारका उद्यम करे, चाहे किसी और प्रकार का धन्धा या रोज़गार व अन्य शासनसम्बन्धी कार्य करे, हर सूरतमें धनके इच्छुकको अपनी वासनाओं, कामनाओं और वाञ्छा-ओंको थोडा बहुत मारना ही पड़ता है। अर्थकी प्राप्ति विना तबियतको मारने के नहीं हो सक्ती। यदि नाच रंग, खेल कूद या भोग विलासमें ही वह समय व्यतीत कर दिया जावे जो अर्थके उपार्जन करने में व्यय होना चाहिये तो धन कैसे प्राप्त होगा। इसलिये समझ मनुष्यको यह शिक्षा देती है कि थोड़ा बहुत इन्द्रियोंको मार कर तीनो प्रकार की आवश्यक्ताओंके लिये यथेष्ट धन प्राप्त करे। कहानीमें गायसे मतलब इन्द्रिय समूहसे ही है। दुनिया वह बाज़ार है जहा अर्थकी प्राप्ति होसक्ती है। इसलिये कहानीमें नवयुवकको बताया गया है कि यह बछिया तेरी मिलकियत है। इसे बाज़ारमें लेजाकर तीन अशरफियोंके बदले बेंच डाल। साधारण मनुष्य यही समझते हैं कि नफ्सकी बछियामें इतनीही सुख सम्पत्ति प्रदान करने की शक्ति है इससे अधिक नहीं। वरन् जिस किसी का शुभ उदय हो गया है और वह पिछले जन्ममे पुण्य करके आया है उसको आत्मा और उसके गुणोंका बोध हो जाता है, और उस समय वह इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख प्राप्तिका इच्छुक होता है। तब

उसको इस बातका भी ज्ञान हो जाता है कि नफ़्सकी बछ्यिा दोनों लोकोंमें उसको सुख सम्पत्ति प्राप्त करा सक्ती है। कथानकमें इसी भावको इन शब्दोंमें दर्शाया है कि—

> " जब वह युवक अपनी बछियाको लेकर बाज़ारमें गया तो उसको मनुष्यके रूपमें एक फरिश्ता मिला और उसने उसकी बाछियाके छः स्वर्ण मुहर दाम लगाये। "

यहां फरिश्ता पिछले जन्मके पुण्यकर्मका फल स्वरूप है जिसके द्वारा मनुष्यको इस बातका बोध होता है कि इन्द्रियवांछाओंके मारने से इस लोक और परलोक दोनोंमें इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है। तीन मुहर इस लोकके और तीन मुहर परलोकके सुखोंकी निस्बत कही गईं। यह सब छः स्वर्ण मुहर हुईं। यही मूल्य है जो फरिश्तेने हमारे नवयुवककी बछियाका लगाया। जिसको उस नवयुवकने अपनी मां (बुद्धि) की सलाहसे स्वीकार किया, परन्तु अब उस फरिश्तेने पहिलेसे भी दुगुणा मोल उस बछियाका लगाया, इस प्रतिज्ञापर कि युवक अपनी मातासे उसका ज़िक्र न करे। यह बात तुझे बताई जाचुकी है कि साधारण ज्ञानी मनुष्य नफ़्सकी बछियाका मोल तीन स्वर्ण मुहर ही लगाता है। और वह व्यक्ति जिसको आत्माका बोध हो गया है उसका मोल छः स्वर्ण मुहर लगाता है। परन्तु फरिश्ता अब यह बताता है कि अब भी इसका मूल्य कम लगाया गया; क्योंकि इस नफ़्सकी बछियामें स्वयं आत्माको परमात्मापनमें विराजमान करा देने की शक्ति है इसलिये अब उसका मूल्य पहिलेसे भी दुगुणा लगाया जाता है। मातासे इसका ज़िक्र न करने का आग्रह इस बातको दर्शाता है कि साधारण बुद्धि आत्माके वास्तविक स्वरूपको ग्रहण करने में असमर्थ पाई जाती है। वरन् उसके साथ यह बात

भी बिल्कुल सत्य है कि बिना ज्ञानके मोक्ष भी नहीं मिल सक्ती। इसीलिये कथानकमें नवयुवक अपनी माताको इस अधिक मूल्यका हाल बताता है; और माता अर्थात बुद्धि इसपर पुनः विचार करती है और फिर अन्तमे सत्यका निर्णय हो जाता है।

वह लोग जो इस बछियाको ख़रीदेंगे वह इसराईली (यहूदी) लोग हैं। इसराईलका शब्दार्थ ही आत्माका है। तुम्हे यह भी बता देना आवश्यकीय है कि बछियाकी रिवायत मोहम्मदने स्वयं नहीं गढी थी, वरन एक तौर पर उससे पहिले इसराईली लोगोंमें प्रचलित थी। यद्यपि उसके असली रचयिता गोमेधके समयके हिन्दू ही हैं। अस्तु; इसराईली शब्दका अर्थ यहा पर स्वात्मज्ञानीसे है। स्वात्मज्ञानीको ही परमपदकी प्राप्तिके लिये इस बछियाकी आवश्यक्ता पड़ती है।

अब कथानकमें यह बतलाया गया है कि एक इसराईली अपने एक निकट सम्बन्धीके हाथसे मार डाला गया और घटनास्थलसे एक दूर स्थान पर उसकी लाश डाल दी गई। इसका अर्थ इस प्रकार है कि अन्तरात्मा और बहिरात्मा दोनों एक दूसरे के निकट सम्बन्धी हैं। जिसमें इसराईली तो अन्तरात्मा और उसका निकट सम्बन्धी बहिरात्मा है। अज्ञानताकी दशामें अन्तरात्माका घात बहिरात्मा द्वारा होता है। कारण कि अनात्मवादमें आत्माके लिये स्थान ही नहीं है। घटना स्थलसे दूरस्थ स्थान होने का संकेत संसार अर्थात् आवागमनके चक्रकी ओर है कि जिसमें संसारी जीव सदैवसे ही मिथ्या पाखण्डोंमें विश्वास करता चला आया है। मूसा धर्माचार्य्य है जिसके सामने धर्म और अनात्मवादका नित्यका विवाद पेश होता है। ज्ञानी मनुष्यको विवेकद्वारा यह बोध हो जाता है कि आत्मा एक सत्तायुक्त पदार्थ है और वह इस बातको भी जान लेता है कि अनात्मवाद

उसका घातक है। इसी बातको कथानकमें यों वर्णन किया है कि "मृतव्यक्तिके मित्रोंने कुछ अन्य मनुष्योंपर मूसाके समक्ष हत्याका अभियोग लगाया।" परन्तु अनात्मवादी केवल वादविवादसे कब क़ायल होता है। इस बातको जानते हुये धर्माचार्य्य अब एक मोजिज़ा (चमत्कार) दिखाते हैं। इसीलिये कथानकमें कहा है कि जिन लोगोंपर हत्याका अभियोग लगाया था उनके झुठलाने के लिये साक्षी न मिली। मोजिज़ा बलिदान द्वारा किया जाता है। ईश्वरीय आज्ञा होती है कि अमुक २ चिन्होंवाली एक गऊका बध किया जावे। किन्तु अनाथकी गऊके अतिरिक्त अन्य किसी गऊमें वह चिन्ह नहीं पाये गये। और लोगोंको उतनी गिन्नियां देकर जितनी उसकी खालमें आ सकें, उसको खरीदना पड़ा। कुछ इससे भी बहुत अधिक मूल्य बताते हैं। इसका अर्थ अब बिलकुल स्पष्ट है। गऊके चिन्होंका वर्णन केवल इसलिये किया गया कि साधारण गऊका भ्रम न हो जावे। कारण कि साधारण गऊके बलिदानसे मोक्ष (परम पद)। की प्राप्ति नहीं हो सकती। उससे तो केवल पाप और दुर्गतिका बंध ही होता है। अलबत्तः नवयुवककी बछिया अर्थात् विषयवांछाओंके बलिदान (नफ़स कुशी) से इस परम इष्ट कार्यकी पूर्णतया सिद्धि होती है। इसलिये इस बलिदानकी कथामें यह स्पष्ट रीतिसे बता दिया है कि उस नवयुवककी बछियाके अतिरिक्त किसी अन्य गायमें वह चिन्ह नहीं पाये गये।

बछियाका मूल्य जो देना पड़ा, त्यागके स्वरूपको दर्शाता है। परमात्मपदकी प्राप्तिके लिये इन्द्रियोंको मारना आवश्यक है। और इन्द्रियोंको मारना उस समय संभव है कि जब धन दौलत इत्यादि

सब बाह्य पदार्थोंसे मुंह मोड़कर मनुष्य स्वात्माके ध्यानमें संलग्न हो जावे। गऊकी बलिका प्रभाव तत्त्वण अपना असर दिखाता है। वैराग भाव तबियतमे उमड़ा, इन्द्रियोंका दमन हुआ और तत्काल ही सर्वज्ञताके साथ जीवन मुक्तिकी अवस्था प्राप्त हुई। मृतकसे मतलब आत्मासे है जिसको अपना बोध नहीं है। धर्माचार्य महाराज कहते हैं कि यदि वाद विवादमें अनात्मवादका खण्डन करना सर्वथा संभव न भी हो, तौ भी इस अज्ञानी (मृतक) आत्मामें यदि वैराग भाव उमड़ आवे अर्थात् वह वैराग मार्गपर पदार्पण करे तो स्वयं उसको निश्चय हो जायगा कि आत्मद्रव्य कैसा विलक्षण पदार्थ है।

कथामें जो मृतकको वध की हुई गायके अवयवसे छूना कहा है उसका अर्थ यही है कि मृतक जीवात्मा और वैराग भावमें सम्बन्ध पैदा किया जाय अर्थात् आत्मा वैरागमार्ग पर स्वयं चल पड़े।

मोजिज़ा तत्त्वण होता है। जिस किसीने पूर्ण रूपसे अपने अधमात्मा (नफ्स अम्मारा) को मार डाला है उसने तत्त्वण सर्वज्ञता, अमरत्व और परम पदको प्राप्त किया है। और इस बातको भी प्रत्यक्षरूपसे देख लिया है कि मृतक आत्माका हत्यारा कौन है। मोजिज़ेमें देर नहीं लगती। यह चमत्कार सदासे होता आया है और सदा होता रहेगा, वरन् बछियाका पूर्णरूपसे बलिदान करना आवश्यक है। यदि नफ्सकी बछिया पूर्णरूपसे नहीं मरी तो चमत्कार भी नहीं होगा।

अपने हत्या करनेवालेका नाम मृत व्यक्तिने बताया जिसके पश्चात् वह पुनः मृतक होकर गिर पड़ा। इसका भी यही अर्थ है कि जीवनमुक्त को स्वयं प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि अनात्मवाद ही इस आत्माका घातक है और फिर वह पुनः शरीरको त्याग कर मोक्षस्थानको गमन

कर जाता है, जहा वह सदैव के लिये अक्षय, अविनाशी पदमें तिष्ठायमान हो कर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तशक्ति के साथ अपने शुद्ध जीवन सत्तामें सब प्रकारकी कालिमाओं, दोषों त्रुटियों और अपूर्णताओसे रहित स्थित रहता है। इसीका नाम मोक्ष है। मोक्षमें ही जीव सर्वथा शरीररहित होता है।

हे भद्र! यह उत्तम श्रेणीकी शिक्षा है जो गऊकी बलिकी कथामें भरी हुई है। मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई कि आज तूने मुझसे इसका असली भाव पूछा।

मैंने कहाः—गुरुजी! मै तो बिल्कुल आश्चर्यके सागरमें डूब गया। मुझको तो इसका वहम व गुमान भी नहीं हो सक्ता था कि ऐसी धर्मपूर्ण उत्तम शिक्षा इस गन्दे पापोत्पादक भेषमें मिलेगी। इस कथाके रचयिताने अति उत्तम चतुराई दिखाई है। कारण कि एक ही चित्रकी संक्षिप्त लम्बाई चौड़ाईके भीतर उसने सर्व धर्मों एवं सिद्धांतोका सार भर दिया है। आपके मुखारबिंदसे इसका असली भाव सुन कर मेरा हृदय हर्षसे फूला नहीं समाता। अब मुझे आशा होती है कि आपके उपदेश द्वारा बलिदान सम्बन्धी पाखण्डोका थोड़े ही समयमें विध्वंस हो जायगा। वास्तवमें यह इन्द्रियोंका पुञ्ज (मन) बड़ा ही विलक्षण है। इसको थोड़ासा मारने से अर्थात् मेहनत मज़दूरी इत्यादि करने से मनुष्य इस जीवनके उद्देश्योकी पूर्तिका साधन प्राप्त करता है। यह तीन स्वर्णकी मुहरें हुई। इसको व्रतों और नियमों द्वारा कुछ अधिक वशमें लाने से आगामी जन्ममें स्वर्गके सुख मिलते है। यह छः मुहरें हुई। किन्तु यदि इसको पूर्णतया जड़ मूलसे नष्ट कर दिया जावे, अर्थात् इसका बलिदान परमात्माके नामपर चढ़ा दिया जावे, तो यह तत्क्षण हमको परमात्मापनके अनंत ज्ञान,

परमसुखे और नित्य जीवनको प्रदान करता है। यह इसका समतुल्य स्वर्गमे मोल हुआ। ज्ञात होता है कि यह असली भाव अँगरेजी भाषाके निर्माताओंको भली भांति विदित था; क्योंकि शब्द सेक्रीफ़ाइस (sacrifice) अपने शब्दार्थमें अपने यथार्थ भावको सीधे सादे ढंगसे प्रगट करता है। यह शब्द लेटिनी sacrificium से लिया गया है, जो sacer (पूर्ण और पवित्र) और facio (बनाना) से मिलकर बना है। सेक्रीफ़ाइस (sacrifice = बलिदान) का वास्तविक अर्थ अतः ऐसे कर्मसे है जो हमको पूर्ण अथवा पवित्र बना सक्ता है। किसी निरपराध पशुका रक्त कदापि ऐसा नहीं कर सक्ता। कारण कि रक्त विषय वासनाओंकी अपवित्रताको नहीं धो सक्ता। सुतरा वह यथार्थमें मानुषिक अनुकम्पाको जो निर्वाण-प्राप्तिके हेतु परमावश्यक गुण है अदया एवं कठोरतामें बदल देता है। और यदि यह कहना भी संभव होता कि कोई आकाशीय शक्ति रक्तसे प्रसन्न हो कर बलिकर्ताके अपराधोंको क्षमा कर सक्ती, अथवा उसके दोषोंको ढक सक्ती है, तो भी यह प्रगट है कि उसके ऐसा करने से कोई भी अपराधी साधु नहीं बन सक्ता। पवित्र अथवा पूर्ण बनने के लिए यह आवश्यक है कि अपराधी स्वयं प्रयत्न द्वारा अपने हृदयको बदल डाले। अंग्रेजी शब्द होली (holy) का शब्दार्थ भी अति उत्तमताके साथ उसके यथार्थ भावको प्रगट करता है। यह ऐङ्गलो सेक्सन हेल (hail) व प्राचीन जर्मन एवं आइसलैण्डकी भाषाके हील (heil) और गोथिके हैल्स (hails) से लिया गया है। उसका अर्थ पूर्ण व समूचा, अथवा बाधारहित है। अस्तु यह प्रश्न नहीं है कि किसी के दोषोंको छिपाया जाय या उसके अपराध क्षमा किये जावें।

सुतरां भाव अपूर्णको पूर्ण, बाधामयको बाधारहित और रोगीको स्वस्थ्य करने का है। वह केवल बहिरात्माका बलिदान है जो हमको होली (holy =पूर्ण) बना सक्ता है। जैसे जैसे दुष्प्रवृत्तियां और दुष्परिणाम, जिनसे पापकी यह अभागी मूर्ति बनी है, नष्ट होते है तैसे तैसे शुद्ध परमात्मस्वरूप स्वतंत्र होकर उस व्यक्तिके जीवनमें, जो उसको नष्ट करता है, प्रगट होता है। और अनन्तर अपवित्रता और पापकी शक्तियोंके पूर्ण रूपेण नाशको प्राप्त होने पर आत्मा जो अब इन अपवित्र एवं अशुद्ध करनेवाले कारणोंसे छुटकारा पाने के कारण पूर्ण (whole) और पवित्र (holy) हो गया है, साक्षात् परमात्मा हो जाता है।

भगवन ! मैं आपके वचनोंसे कृतकृत्य हुआ और आपकी इस महती कृपाका आभारी हूं। आपकी अमृतरूपी वाणी द्वारा इस गुप्त रहस्यमयी भेदको श्रवण करने से मेरा मोह तथा हृदयका अन्धकार सब नष्ट हो गया, और मेरे मनका विषाद जाता रहा। आपकी ऐसी महती दयाका गुणानुवाद गाने के लिये मेरी जिह्वामें सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि आपने परम दयालु होकर जो भेद आज मुझे बतलाया है वह बड़े २ महर्षियों और पंडितोंको सहस्रों वर्षोंकी खोजसे भी प्राप्त नही हुआ। आपके अमित अनुग्रहसे मेरे संशयोंका विनाश हो गया। मेरे एक क्या यदि सहस्र मुख भी हो जावें तो भी आपकी अतुल दयाकी पूर्णतया प्रशंसा करना मेरे लिये असम्भव है। मै आपका ऋणी हूं।

गुरुजीने कहा—प्रियपुत्र ! सब बातें अपने २ समयपर ही हुआ करती है। रहस्यावादकी गुप्त शिक्षाका अब अन्त समय निकट आ गया है। इसीलिये प्रिय भद्र ! तेरे मनमे अति उत्तम अभिलाषा उसके मर्मके जानने की उत्पन्न हुई। जा ! अब इस शुभ संवादकी

सूचना, आत्मशक्ति जनतामें फैला। श्रुतिदेवी तेरी और सार्वधर्म प्रेमियोंकी रक्षा करे और सबका कल्याण हो।

अंतिम दो शब्द।

दुनियाँ मतवाली हो रही है। लोग पापी, दुराचारी, कपटी और बेईमान बन गये है। खासकर राष्ट्रीय मामलोंमें दगा और फरेबसे काम लिया जाता है। जो महान संग्राम इस वक्त यूरोपमें हो रहा है उसका भी यही एक कारण है कि वहाँ वालोंके दिलोंमें संतोष नहीं है, और विना संतोषके दूसरोंके प्रति इन्साफ और मैत्री भावका वर्ताव नहीं हो सकता, वल्कि हमेशा लूट-खसोटकी नियत रहती है। जो राष्ट्र अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं वे अन्य कूटनीतिज्ञ राष्ट्रोंकी शिकार वन जाते हैं अथवा यूँ कहो, कूटनीतिज्ञ राष्ट्र उनपर अपनी सत्ता जमा लेते हैं।

यह संतोष मनुष्योंके हृदयोंमें कैसे पैदा किया? इसके लिये वर्तमान यूरोपीय युद्धसे ही स्पष्ट है कि न तो यूनिवरसिटियोंकी शिक्षाका और न अलंकारयुक्त धर्म ग्रन्थोंकी आज्ञाओंका राष्ट्रीय नेताओंके हृदयोंपर कुछ भी असर होता है; क्योंकि यूनिवर्सिटीकी शिक्षा मनुष्यको यही सिखाती है कि उसमें और जानवरोंमें बुद्धिके सिवा और कुछ भी फरक नहीं है। और अलंकारयुक्त धर्मशास्त्रोंका प्रभाव इसलिये नहीं पड़ता कि उनका भाव जबतक ठीक ठीक न समझा जाय तबतक वह कोरा पाखंड ही नजर आता है। इसलिए वैज्ञानिक धार्मिक शिक्षा ही एक मात्र कुंजी है जो मनुष्यको आत्मविज्ञानका बोध कराती है, जिसके सबब उसको अपनी आत्माकी उन्नति और

अवनतिका खयाल होता जाता है। वो दुनियाँके वैभवोंकी ओर वहीं तक नजर डालता है जहाँ तक कि ऐसा करने से उसकी आत्माको नुकसान न पहुँचे। आत्मा अगर दुर्गतिको गया तो दुनियाँके वैभवोके संग्रहसे क्या प्रयोजन ?

अब जिनको साइनटिफिक धर्मका पता चल गया है या जिन्हें मालूम है, उनका कर्तव्य है कि वो आत्मविज्ञानका पूर्ण रूपेण दुनियाँमे प्रचार करने मे लग जाँय और इस तरह प्रचार करे जिससे किसी को बुरा न लगे—प्रेम और मित्रतासे काम लें—किसी को दुतकारें नहीं, न किसीके लिये म्लेच्छ या धर्मभ्रष्ट आदि शब्दोंका प्रयोग करें। प्रेमके साथ जब आत्मविज्ञानका प्रचार होगा तो निस्संदेह लोगोंके दिलोंपर उसका असर पड़ेगा, परंतु याद रहे प्रचारकको स्वयं अपने मतके पाखंडोंसे, यदि कोई उसमें हों, मुक्त होना पड़ेगा।